गौर शताब्दी संवत् वि. २०१७

ई. १९६०

उपदेश और आपत्ती

मुद्रक :—

श्री देवदत्त शास्त्री, विद्याभास्कर,

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान प्रेस

साधुआश्रम, होशिआरपुर ।

प्रास्ताविक कथन

सामाजिक-जीवन की गाड़ी को ठीक रूप में चलाने के लिये दो मार्ग हैं—आगार धर्म और अनगार धर्म—गृहस्थ धर्म और साधु धर्म—राजनीति और धर्म-नीति।

जिस समय मनुष्य का सामाजिक रूप नहीं होता (युगल-समय होता है) तो उस समय न राजनीति होती है और न ही धर्मनीति। जब समाज में दोष बढ़ते हैं तो फिर सामाजिक-रूप होना प्रारम्भ हो जाता है। वर्ग की स्थापना होती है और उस का मुखिया 'कुलकर' कहलाता है। वह मुखिया दोषी को 'हकार' की दण्डनीति पर चलाता है। आगे जाकर और दोष बढ़ते हैं तो 'मकार' की दण्डनीति प्रवृत्त होती है, इस प्रकार दोषों के बढ़ते हुए क्रम से 'धिक्कार' नीति, 'परिभाष' नीति, 'मण्डल-बन्ध'=नजर-बन्दी 'चारक'=कैद और 'छविछेद'=अंगछेद की नीतियां प्रवृत्त होती हैं।* ये राजनीति की नीतियां हैं।

राजनीति स्थापित होने पर धर्मनीति स्थापित होती है। यह भी एक सामाजिक रूप है परन्तु अनगार-धर्म पर इसके सारे आधारों का। इस सामाजिक संगठन की दस नीतियां होती हैं। ये नीतियां, दण्डनीतियां नहीं, अपितु सामाचारी-नीतियां हैं। जैसे, अमुक काम करना है और आज्ञा, सहर्ष—अपनी इच्छापूर्वक सहर्ष कर पालन किया जाता है, साधु-पुरुषों की नीतियां जो हुईं, यहां आज्ञा—दबाव देकर काम कराने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता, हां! यदि वह दोषी, दोष को

* सत्तविहा दंडनीई पण्णत्ता तं जहा—हक्कारे १, मक्कारे २, धिक्कारे ३, परिभासे ४, मंडलबंधे ५, चारए ६, छविच्छेदे ७ ६ —स्थानांग सूत्र ७.५५८

ंबर-पिणिन्दराओ मोक्खस्स पहो, नओ पहो नत्थि ।
त्तो य पहाणंगं पच्छित्तं, जं च नाणस्स ॥
सग्गो चरणं, चरस्स वि नेव्वाणं, चरण-सोहणत्थं च ।
ाच्छित्तं, तेण नयं नेयं मोक्खत्थिणाऽवस्सं ॥

साथ यथाशक्ति चिकित्सा करना सकता है ऐसा कभी भी हुआ जब कि उस में ज्ञानाचार की कमी हुई; ग्लान चिकित्सा करते कहीं-न-कहीं असावधानी होना भी सम्भव है जिस से चारित्राचार के दोष भी लग जाते हैं।

नौका द्वारा नदी को पार करना, वर्षा में लघु-शङ्कादि की निवृत्ति के लिये जाना इत्यादि अपवादों में शक्ति-हीनता की तो कोई बात नहीं, परन्तु इन सब में असावधानी तो हो ही सकती है जो कि चारित्राचार के दोष हैं जिन का विउस्सग्ग नामक पाञ्चवां प्रायश्चित्त लिया जाता है। जितनी असावधानी उतना उसका प्रायश्चित्त, एक साधक को लेना ही चाहिये। ज्ञानावलम्बन, दर्शनावलम्बन एवं चारित्रावलम्बन से भी अपवाद-मार्ग में दोष-सेवन हो जाते हैं अर्थात् ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की अपनी एवं दूसरों की वृद्धि के लिये उन दोष-युक्त कार्यों को करना पड़ जाता है,[1] परन्तु ऐसा करने वाला साधक यदि अतिपरिणामक है अथवा अपरिणामक है तो वह दप्पिय-दोष का पात्र है और यदि साधक परिणामक है तो वह कप्पिय प्रायश्चित्त वाला माना जाता है जिस के लिये उसे आलोचना-मात्र करनी होती है जो कि प्रथम श्रेणी का प्रायश्चित है, परन्तु कप्पिय[2] कार्यों में भी किसी परिणामक से जो-जो असावधानियां हुई हों उनका प्रायश्चित्त उसे पृथक् रूप

---

१. जैसे कि साधु महाराज का व्याख्यान कराने के लिये जीव जन्तुओं से युक्त स्थान साफ करवाना, दरी विछाना, चान्दनी लगवाना हवा में चान्दनी का हिलना, दरियों के नीचे जीवों का दब जाना और साधु महाराज का वहां व्याख्यान करना आदि कार्य।

२. कप्पिय=कल्पनीय अर्थात् करने योग्य कार्य।

से लेना होता है। किन्तु प्रतिषेवनात्मक के जो दर्पिक[1] दोष हैं उनका प्रायश्चित्त तो बहुत अधिक है और अयतनात्मक को भी अधिक प्रायश्चित्त लेना होता है।

एक ही प्रकार के दोष-सेवन के पीछे भिन्न-भिन्न भावना के आधार पर उसका प्रायश्चित्त भी भिन्न-भिन्न होता है जैसे कि शरीर की धोवा-धोई की एक ही क्रिया है, परन्तु इस के पीछे भिन्न-भिन्न भावना होने पर अलग-अलग प्रायश्चित्त है। निशीथ सूत्र के तीसरे उद्देश में और चौथे उद्देश में इसके लिए लघु-मास का प्रायश्चित्त है, पन्द्रहवें उद्देश के सूत्र १०७ और १०४ में लघु-चौमासी और छठे एवं सातवें उद्देश में गुरु-चौमासी प्रायश्चित्त का विधान किया गया है।[2]

---

१. दर्प पूर्वक कार्य करने के जो दोष हैं।

२. निशीथ सूत्र ३। २७—

जे भिक्खू अप्पणो पाए सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

निशीथ सूत्र ४। ४—

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स पाए सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

निशीथ सूत्र १५। १०७—

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा अप्पणो पाए सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मा-

निशीथ सूत्र [illegible]—

जे भिक्खू मेहुण-पडियाए अप्पणो पाए सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोअंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

निशीथ सूत्र ६ । २८—

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-पडियाए अप्पणो पाए सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलंतं वा पधोअंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

निशीथ सूत्र ७ । १८—

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-पडियाए अन्नमन्नस्स पाए सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलंतं वा पधोअंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

(६) सामर्थ्य होते हुए भी उस कृत्यों को, अपवाद सेवन करने के पीछे क्या भावना काम करती है ?

इन बातों का विचार कर लेने पर तब कहीं जा कर प्रायश्चित्त का निर्णय हो पाता है।*

अब सामान्य रूप से भिन्न-भिन्न दोष का क्या-क्या प्रायश्चित्त होता है, इस प्रकार दस प्रायश्चित्तों का वर्णन क्रमशः किया जाता है—

पायच्छित्ते दसविहे पण्णत्ते तं जहा—(१) आलोयणारिहे, (२) पडिक्कमणारिहे, (३) तदुभयारिहे, (४) विवेगारिहे, (५) विउस्सग्गारिहे, (६) तवारिहे, (७) छेयारिहे, (८) मूलारिहे, (९) अणवट्ठप्पारिहे, (१०) पारंचियारिहे ॥

—भगवती सूत्र २५।७।५॥

१. आलोचना—

कहिज्जा से अंता, भेए उवउत्तस्स निरुपालेव ।
उज्जुभावस्स विसोही, तच्चं आलोयणा भणिया ॥
([illegible])

---

* [illegible]

—व्यवहार सूत्र उद्देश १० भाष्यगाथा [illegible]

परिणामक द्वारा जो कल्प्य कार्य उपयोगपूर्वक निरतिचार-रूप से किए जाते हैं, छद्मस्थ होने के नाते संभावित अतिक्रम आदि की विशेष-शुद्धि के लिए साधक आलोचना करता है जो कि प्रथम प्रायश्चित्त है। जैसे कि—

१. भिक्खू य गणाओ अवक्कम्म परपासंड-पडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरेज्जा, से य इच्छेज्जा दोच्चं पि तमेव गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए; नत्थिणं तस्स तप्पत्तियं केइ छेए वा परिहारे वा नन्नत्थ एगाए आलोयणाए।

—व्यवहार सूत्र १।३२॥

जो साधु अपने गण सम्प्रदाय का त्याग कर अन्य धार्मिक सम्प्रदाय अङ्गीकार करके विचरे और पुनः पहली सम्प्रदाय में आना चाहे, तो उसे कोई दीक्षा-छेद व पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त नहीं आता केवल एकमात्र उसे आलोचना करनी होती हैं। [क्योंकि उसने अपने संयम में कोई दोष नहीं लगने दिया है।]

(२) निग्गंथं च णं राओ वा वियाले वा दीहपिट्ठो लूसेज्जा; इत्थी वा पुरिसस्स ओमज्जेज्जा, पुरिसो वा इत्थीए ओमज्जेज्जा, एवं से कप्पइ, एवं से चिट्ठइ, परिहारं च से ण पाउणइ—एस कप्पे थेर-कप्पियाणं; एवं से नो कप्पइ, एवं से नो चिट्ठइ, परिहारं च णो पाउणइ—एस कप्पे जिण-कप्पियाणं।

—व्यवहार सूत्र ५।२१॥

साधु को रात्रि व सायं के समय किसी विष-धर सर्प ने काट खाया हो, उस समय उपचार जानने वाले किसी पुरुष का योग न मिले और स्त्री का मिलता हो, तो स्त्री के पास से उपचार करा लेवे; इसी प्रकार साध्वी को काटा जाने पर उसे उपचार जानने वाली स्त्री का योग न मिले और पुरुष का मिलता हो, तो वह साध्वी उस पुरुष से उपचार करा लेवे,

इस प्रकार करना उन्हें कल्पता है और इस प्रकार किया जाता है, उन्हें किसी प्रकार का पारिहारिक तप प्रायश्चित्त नहीं आता—यह स्थविर-कल्पियों की मर्यादा है। परन्तु जिन-कल्पी साधु को ऐसा करना नहीं कल्पता है और न वे ऐसा करते हैं, न करने पर उन्हें कोई पारिहारिक प्रायश्चित्त नहीं आता। (अल्प-प्रायश्चित्त, केवल आलोचना करनी होती है)

(२) भिक्खू य इच्छेज्जा गणं धारित्तए, नो से कप्पइ थेरे अणापुच्छित्ता गणं धारित्तए, कप्पइ से थेरे आपुच्छित्ता गणं धारित्तए। थेरा य से वियरेज्जा, एवं से कप्पइ गणं धारित्तए; थेरा य से नो वियरेज्जा एवं से नो कप्पइ गणं धारित्तए। जण्णं थेरेहिं अविइण्णं गणं धारेइ, से संतरा छेए वा परिहारे वा। जे ते साहम्मिया उट्ठाए विहरंति, नत्थि णं तेसिं केई छेए वा परिहारे वा। —व्यवहार सूत्र ३।२॥

किसी साधक के मन में कुछ साधुओं को साथ लेकर विचरने की इच्छा हुई, तो उसे स्थविर भगवान् से बिना पूछे ऐसा करना नहीं कल्पता, उनसे पूछ कर करना कल्पता है। स्थविर भगवान् आज्ञा दे देवें तो साधुओं को साथ लेकर विचरना कल्पता है, यदि वे आज्ञा न देवें तो ऐसा करना नहीं कल्पता। जो साधक स्थविर भगवान् की आज्ञा बिना साधुओं को साथ लेकर जितने दिन विचरे, उतने ही दिन का उसे छेदान्तर व पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त आता है। परन्तु जो साधु उसके साथ विचरते हैं उन्हें कोई छेद या तप प्रायश्चित्त नहीं आता। (केवल आलोचना करनी होती है)

२. प्रतिक्रमण—

पंचविहे पडिक्कमणे पण्णत्ते, तं जहा—आसवदार-पडिक्कमणे,

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] ॥

इस तीसरे प्रायश्चित्त में, दोषों की आलोचना भी की जाती है और मिथ्यादुष्कृत भी दिया जाता है। यह निम्नलिखित दोषों का होता है जो इस प्रकार है

सम्भ्रमावस्था में, भयावस्था में, रोगावस्था में द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव की यथावत् धारणा में, आतुरतापूर्वक शीघ्रता से कार्य करने में, अनजानपन में, कोई कार्य अपने वश के बाहिर हो जाने से उस समय ज्ञान, दर्शन, एवं चारित्र के मूलगुणरूप पाञ्च महाव्रतों तथा उत्तरगुण दश-विध प्रत्या-ख्यान पाञ्च समिति आदि में जो अतिचार लगते हैं अथवा अतिचार-विषयक आशंका होती है तो उस अवस्था में यह तीसरा प्रायश्चित्त किया जाता है।

इसी प्रकार जो-जो दुश्चिन्तन किया हो, दुर्भाषा बोली हो, दुष्क्रिया की हो तथा उपयोग लगाने पर भी जो देवसी आदि अतिचार स्मृति में न आरहे हों उन सब का 'तदुभय' प्रायश्चित्त होता है।

ग्रहण अर्थात् गीतार्थ द्वारा अपवाद-मार्ग में आचरण करते, उपयोग रखते हुए भी ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र के हेतु जो सहसात् विराधना होती है वो उसका 'तदुभय' प्रायश्चित होता है।[1]

४. विवेक—

पिंडोवहि, सेज्जाई गहियं कडजोगिणोवउत्तेणं।
पच्छा नायमसुद्धं सुद्धो विहिणा विगिंचंतो॥
कालद्धाणाइच्छिय-अणुग्गयत्थमिय-गहियमसणाई उ।
कारण-गहिउव्वरियं भत्ताइ-विगिंचियं सुद्धो॥

भोजन, वस्त्र आदि उपकरण एवं शय्यादि, कृतयोगी द्वारा उपयोगपूर्वक ग्रहण करने के पश्चात् ज्ञात हो कि यह गृहीत वस्तु सदोष है अशुद्ध है, तो विधिपूर्वक उसका त्याग करता हुआ शुद्ध है। यह विवेक प्रायश्चित है।

इसी प्रकार प्रथम प्रहर में ली हुई वस्तु चतुर्थ प्रहर में रह जाये तब; [illegible] क्षेत्र-काल-मार्ग से ऊपर [illegible] एवं [illegible] सूर्योदय से पूर्व एवं सूर्यास्त के पश्चात् [illegible] ऐसे यह ज्ञात होवे कि अभी सूर्योदय नहीं हुआ अथवा अस्त हो चुका है तो उस वस्तु को विधिपूर्वक त्याग करने से शुद्धि होती है।

रोगी के निमित्त, आचार्य महाराज के निमित्त, [illegible] के निमित्त, [illegible] के निमित्त, [illegible] के [illegible] ग्रहण कर [illegible] अधिक [illegible] वस्तु ग्रहण कर ली गई हो तो यह

1. [illegible]

इस प्रकार चार भेद होते हैं—(१) लघुमास[1], (२) गुरुमास, (३) लघुचौमासी, (४) गुरुचौमासी[2]। इन चारों के फिर तीन-तीन भेद किए गए हैं—

(१) परवश-पने किसी म्लेच्छ अनार्य राजा आदि तथा देवता के दबाव से सेवन किए गए उपयोग रहित दोषों के प्रायश्चित्त।

(२) स्वयं आतुरता से उपयोग सहित सेवन किए गए दोषों के प्रायश्चित्त।

(३) जान-बूझ कर मोहनीय-कर्म के उदय से मूर्छाभाव-पूर्वक सेवन किए गए दोषों के प्रायश्चित्त।

इन बारह प्रकार के तप-प्रायश्चित्तों के जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट तीन-तीन भेद कर देने पर कुल छत्तीस भेद बनते हैं।

इन छत्तीस प्रकार के 'तप' प्रायश्चित्तों में कौन-सा तप और कितना तप होता है यह प्राचीन आचार्य देवों की धारणानुसार नीचे के कोष्ठक में दिया जाता है—

उत्कृष्ट तप-प्रायश्चित्त छः मास का होता है, अतः छः मास के भी दो भेद गणना में आते हैं जैसे कि लघु-छमासी १६५ उपवास, गुरु-छमासी १८० उपवास।

१. लघु-मास से भी छोटा तप-प्रायश्चित्त 'भिन्नमास' आया है जो कि २५ उपवास का होता है।

२. पंचविहे आयार-पकप्पे पण्णत्ते तंजहा—(१) मासिए उग्घाइए, (२) मासिए अणुग्घाइए, (३) चउमासिए उग्घाइए, (४) चउमासिए अणुग्घाइए, (५) आरोवणा॥

—ठाणांग सूत्र ५।२।१४॥

दंड [illegible]	[illegible] सहित			[illegible] से [illegible] सहित			[illegible] से		
[illegible]	जघन्य	मध्यम	उत्कृष्ट	जघन्य	मध्यम	उत्कृष्ट	जघन्य	मध्यम	उत्कृष्ट
लघु मास	५ [illegible]	१५ [illegible]	३० [illegible]	५ आयंबिल [?]	१५ आयंबिल [?]	३० आयंबिल [?]	५ उपवास	१५ उपवास	३० उपवास
गुरु मास	५ [illegible]	१५ [illegible]	३० [illegible]	५ आयंबिल [?]	१५ आयंबिल [?]	३० आयंबिल [?]	५ उपवास	१५ उपवास	३० उपवास
लघु चौमासी	५ [illegible]	६० [illegible]	१०८ उपवास	५ उपवास [illegible]	५ बेले [illegible]	१०८ उपवास [illegible]	५ बेले पारणे में आयंबिल	५ तेले पारणे में आयंबिल	१०८ उपवास पारणे में आयंबिल
गुरु चौमासी	५ उपवास	५ बेले	१२० उपवास तथा ५ दिन का छेद (१००)	५ बेले तथा ५ दिन का छेद	५ तेले तथा ५ दिन का छेद	१२० उपवास तथा ५ दिन का छेद (१०८)	५ तेले पारणे में आयंबिल तथा १० दिन का छेद	१५ तेले पारणे में आयंबिल तथा १५ दिन का छेद	१२० उपवास पारणे में आयंबिल तथा मूल दीक्षा (१२०)[1]

१. [illegible] को [illegible] १२० दिन का छेद देना।

[illegible] में [illegible] चन्द्रग्रहण एवं सूर्यग्रहण आदि [illegible] में स्वाध्याय करने, करवाने एवं करने वाले को अच्छा समझने से अनुद्घातिक प्रायश्चित्त आता है।

४. जे भिक्खू इंदमहाइएसु महामहेसु [illegible] सज्झायं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —निशीथ सूत्र १९।[illegible]

[illegible] के अवसर [illegible] को [illegible] न पढ़ाने से और [illegible] पढ़ने वालों को अच्छा समझने से अनुद्घातिक प्रायश्चित्त आता है।

५. जे भिक्खू णव-बंभचेराइं [illegible] उवरिं-सुयं वाएइ, वाएंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —निशीथ सूत्र १९।१८

आचारांग सूत्र पढ़ाए बिना [illegible] आदि [illegible] पढ़ाने, पढ़ने वाले को अच्छा समझने से अनुद्घातिक प्रायश्चित्त आता है।

६. जे भिक्खू [illegible] करेइ, करेंतं वा साइज्जइ, जे भिक्खू [illegible] करेइ, करेंतं वा साइज्जइ, जे भिक्खू [illegible] करेइ, करेंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —निशीथ सूत्र ११।[illegible]

[illegible] अनुद्घातिक प्रायश्चित्त आता है।

१. (क) [illegible]

—[illegible]

[illegible] के कारण [illegible] किये बिना अथवा [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] और, इसे [illegible] समझने [illegible] को [illegible] [illegible] होता है।

१. ये भिक्खू [illegible] [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

—[illegible] [illegible] १०।१४३, ४३॥

प्रमाद के कारण अथवा [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] में [illegible] करना और [illegible] में [illegible] और इसे [illegible] समझने से [illegible] [illegible] है।

२. ये भिक्खू [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

—[illegible] [illegible] १०।१४३

जो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है जो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।

३. ये भिक्खू [illegible] [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

—[illegible] [illegible] ११।४३, ४१८

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] को [illegible] [illegible] और [illegible] को [illegible] [illegible] और [illegible]

९. जे भिक्खू दुगुंछिय-कुलेसु असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ, जे भिक्खू दुगुंछिय-कुलेसु वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कंबलं वा, पायपुंछणं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ, जे भिक्खू दुगुंछिय-कुलेसु वसहिं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—निशीथ सूत्र १६।२७,२८,२९

दुर्गंछनीय कुलों से आहार पानी, वस्त्र पात्र, तथा वसति-स्थान लेकर जिन-शासन की अवहेलना में निमित्त बनने वाले एवं इसे अच्छा समझने वाले साधक को लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है॥

१०. जे भिक्खू [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—निशीथ सूत्र १६।८

जो साधक [illegible] [illegible], न [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] जिन-शासन की अवहेलना [illegible] है और इसे अच्छा समझता है उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

११. जे भिक्खू [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] वा [illegible]; जे भिक्खू [illegible] [illegible] [illegible] वा [illegible] वा [illegible], [illegible] वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—निशीथ सूत्र १६।११,१२

[illegible]

इत्यादि अनेकों प्रकार के दर्शनाचार-विषयक दोषों के प्रायश्चित्त समझ लेने चाहियें।

अब चारित्राचार के प्रायश्चित्तों का वर्णन किया जाता है।

विषय, कषाय, निद्रा, मद और विकथा रूप प्रमाद के वशीभूत होकर चारित्राचार में जो दोष लगते हैं उनके दो भेद होते हैं, मूलगुण के दोष और उत्तरगुण के दोष। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह विषयक तथा रात्रि-भोजन त्याग विषयक दोषों को मूलगुणों के दोष कहा जाता है और पाञ्च समिति, तीन गुप्ति, आहार, विहार, एवं दशविध प्रत्याख्यान विषयक दोषों को उत्तरगुणों के दोष कहा जाता है। इन सब दोषों के प्रायश्चित्तों का वर्णन क्रमशः इस प्रकार है—

मूलगुणों के प्रायश्चित्त—

१. जे भिक्खू माउग्गामं मेहुण-वडियाए विन्नवेइ, विन्नवंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—निशीथ सूत्र ६।१॥

जो साधक किसी स्त्री को मैथुन भाव से कोई वचन कहता है और इस प्रकार के वचन कहने वाले के अशुभ विचारों में रस लेता है तो उसे गुरु-चौमासी प्रायश्चित्त आता है।

२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए लेहं लिहइ, लेहं लेहावेइ; लेह-वडियाए बहियाए गच्छइ, गच्छंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —निशीथ सूत्र ६।१२॥

जो साधक किसी श्रमण को [illegible] भाव से कोई पद लिखता है, अथवा दूसरे से लिखवाता है और लिखने के लिए [illegible] [illegible] ऐसा करने वाले को [illegible] [illegible] गुरु-चौमासी प्रायश्चित्त आता है।

३. जे भिक्खू [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। —निशीथ सूत्र [illegible]

जो साधक [illegible] [illegible] किसी श्रमण के [illegible] [illegible] [illegible] गुरु-चौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

४. जे भिक्खू [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। —निशीथ सूत्र [illegible]

जो साधक [illegible] किसी श्रमण के [illegible] [illegible] [illegible] गुरु-चौमासी का प्रायश्चित्त [illegible] है।

५. जे भिक्खू [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। —निशीथ सूत्र [illegible]

जो साधक [illegible] किसी श्रमण के [illegible] [illegible] [illegible] गुरु-चौमासी प्रायश्चित्त आता है।

६. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए खीरं वा, दहिं वा, णवणीयं वा, सप्पिं वा, गुलं वा, खंडं वा, सक्करं वा, मच्छंडियं वा अण्णयरं वा पणीयं आहारं आहारेइ, आहारेंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—निशीथ सूत्र ६।७७

जो साधक कामी माता के समान किसी स्त्री के साथ मैथुन करने के भाव से दूध, दही, मक्खन, घी, गुड़, खाण्ड, शक्कर, मिश्री एवं अन्य कोई प्रणीत आहार करता है, एवं ऐसा करने वाले के विचारों में रस लेता है तो उसे गुरुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

७. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-पडियाए तेइच्छं आउट्टइ तेइच्छं आउट्टंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—निशीथ सूत्र ७।७६

जो साधक किसी स्त्री के साथ मैथुन के भाव से शरीर की चिकित्सा स्वयं करता है औरों से करवाता है और करते हुए को अच्छा समझता है तो उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

८. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-पडियाए मणुन्नाइं पोग्गलाइं उवकिरइ, उवकिरंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—निशीथ सूत्र ७।८

जो साधक मैथुन भाव से सुगन्धित पुद्गलों को, शरीर पर, वस्त्र पर अथवा स्थानक में बिखेरता है एवं इसे अच्छा समझता है तो उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

९. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-पडियाए असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा देइ, देंतं वा साइज्जइ; पडिच्छइ, पडिच्छंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—निशीथ सूत्र ७।८५,८६॥

जो साधक मैथुन भाव से किसी स्त्री को आहार-पानी देता है, दिलवाता है और देने वाले को, [illegible] से [illegible] है, इसी प्रकार मैथुन भाव से आहार-पानी स्वयं ग्रहण करता है और उसे अच्छा समझता है तो उसे गुरुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

१०. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा देइ, देंतं वा साइज्जइ, पडिच्छइ, पडिच्छंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—निशीथ सूत्र ७:८०,८१

जो साधक मैथुन भाव से किसी स्त्री को वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रोंछन देता है, दिलवाता है और उसे अच्छा समझता है, इसी प्रकार मैथुन भाव से स्वयं ग्रहण करता है तथा इसे अच्छा समझता है तो उसे गुरुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

११. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए सज्झायं वाएइ, वाएंतं वा साइज्जइ, पडिच्छइ, पडिच्छंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —निशीथ सूत्र ७:९१,९२

जो साधक किसी स्त्री से मैथुन के भाव से उसे वाचना देता है और स्वयं उससे [illegible] के [illegible] को [illegible] करता है तो उसे गुरुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

१२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णयरेणं इंदिएणं आकारं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —निशीथ सूत्र ७:९३

जो साधक किसी स्त्री को मैथुन [illegible] किसी इन्द्रिय से [illegible] है [illegible] मैथुन के भाव [illegible] है और [illegible] [illegible] [illegible]

भावों को रखता हुआ समझता है तो उसे गुरुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

१३. निग्गंथिं च णं गिलायमाणिं माया वा भगिणी वा धूया वा पलिस्सएज्जा, तं च निग्गंथे साइज्जेज्जा, मेहुणपडिसेवणपत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं । —बृहत्कल्प सूत्र ४।९

कारण पड़ने पर कोई साधु किसी साध्वी की रुग्णावस्था में सेवा करता हुआ उसे माता बहिन व पुत्री समझ कर कर रहा है, परन्तु इस बीच उसका मन विकृत हो जाए अर्थात् मैथुन के भाव आ जाएँ तो उसे गुरुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

१४. निग्गंथं च णं गिलायमाणं पिया वा भाया वा पुत्ते वा पलिस्सएज्जा, तं च निग्गंथी साइज्जेज्जा, मेहुणपडिसेवणपत्ता आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं । —बृहत्कल्प सूत्र ४।१०।

किसी कारण के आ पड़ने पर कोई साध्वी किसी साधु की रुग्णावस्था में सेवा कर रही है और अपने मन में पिता भाई व पुत्र की भावना लिये हुए है परन्तु बीच में यदि उसके मन में मैथुन के भाव आ जाएँ तो उसे गुरुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

१५. निग्गंथीए य राओ वा वियाले वा उच्चारं वा पासवणं वा विगिञ्चमाणीए वा विसोहेमाणीए वा अन्नयरे पसुजाईए वा पक्खिजाईए वा अन्नयर-इन्दियजाए तं परामुसेज्जा, तं च निग्गंथी साइज्जेज्जा, हत्थकम्म-पडिसेवणपत्ता आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ।

—बृहत्कल्प सूत्र ५।१३॥

कोई साध्वी, सायं अथवा रात्रि में उच्चार-प्रश्रवण करने गई, किसी जीव-जन्तु अथवा काष्ठ आदि का उसके शरीरा-

[illegible] हो जाने पर, यदि [illegible] उत्पन्न हो जाए [illegible] और [illegible] करे, और [illegible] के साथ [illegible] जाएँ तो उसे [illegible] होता है।

१६, [illegible]

—[illegible] सुत्त [illegible]

कोई [illegible] भिक्षु के [illegible] हो जाने पर यदि [illegible] उत्पन्न हो जाए [illegible] और [illegible] करे, और [illegible] जाएँ तो उसे [illegible] होता है।

१७, ये [illegible] । ये [illegible] । ये [illegible] । ये [illegible] । ये [illegible] । ये [illegible] । —[illegible] सुत्त १११, [illegible]

१८, [illegible]

अणुग्घाइयं। देवी य पुरिसरूवं विउव्विता निग्गंथिं पडिग्गाहेज्जा, तं च निग्गंथी साइज्जेज्जा, मेहुणपडिसेवणपत्ता आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। देवे य इत्थिरूवं विउव्विता निग्गंथं पडिग्गाहेज्जा, तं च निग्गंथे साइज्जेज्जा, मेहुणपडिसेवणपत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं, देवी य पुरिसरूवं विउव्विता निग्गंथिं पडिग्गाहेज्जा, तं च निग्गंथी साइज्जेज्जा, मेहुणपडिसेवणपत्ता आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—बृहत्कल्प सूत्र ५।१४॥

१९. जे भिक्खू लहुसगं फरुसं वयइ, वयंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं। —निशीथ सूत्र २।१८॥

जो साधक जरा सी भी वाचनिक हिंसा स्वयं करता है दूसरे से करवाता है और करने वाले को अच्छा समझता है तो उसे लघुमास का प्रायश्चित्त आता है।

२०. जे भिक्खू लहुसगं मुसं वयइ, वयंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं। —निशीथ सूत्र २।१९॥

जो साधक थोड़ा सा भी मृषावाद स्वयं बोलता है दूसरे से बुलवाता है और इसे अच्छा समझता है तो उसे लघुमास का प्रायश्चित्त आता है।

२१. जे भिक्खू लहुसगं अदत्तं आइयइ, आइयंते वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—निशीथ सूत्र २।२०॥

जो साधक सूक्ष्म चोरी—विना आज्ञा किसी की वस्तु ग्रहण करता है, करवाता है और ग्रहण करने वाले को अच्छा समझता है तो उसे लघुमास का प्रायश्चित्त आता है।

२२. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गन्थीण वा वेरज्ज-विरुद्ध-रज्जंसि सज्जं

[illegible] ।

[illegible] —[illegible] ११२८

जहाँ कोई [illegible] न हो ([illegible] हो) [illegible] के कोई [illegible] में [illegible] रहा हो, [illegible] के [illegible] साधु [illegible] को [illegible] है। [illegible] न [illegible] कोई [illegible] और [illegible] है [illegible] और [illegible] दोनों पक्षों के दोनों का मेलन [illegible] है [illegible] का प्रायश्चित्त आता है।

२१. [illegible] ।

साधु [illegible] है [illegible]

[illegible] उसे रात्रि-भोजन का कोई दोष नहीं लगता। और यदि वह उस आहार को करता है अथवा किसी अन्य को देता है तो उसे गुरु-चौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

२४. भिक्खू य उग्गय-वित्तीए अणत्थमिय-संकप्पे संथडिए वितिगिच्छासमावन्ने असणं वा ४ पडिग्गाहेत्ता आहारमाहारेमाणे अह पच्छा जाणेज्जा—अणुग्गए सूरिए अत्थमिए वा, से जं च मुहे, जं च पाणिंसि, जं च पडिग्गहे, तं विगिंचमाणे विसोहेमाणे नाइक्कमइ; तं अप्पणा भुंजमाणे अन्नेसिं वा अणुप्पदेमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—बृहत्कल्प सूत्र ५।७॥

भिक्षु का संकल्प है कि सूर्योदय से पूर्व तथा सूर्यास्त के पश्चात् वह आहार न करेगा। साधक, शरीर से कष्ट सहन करने में समर्थ है परन्तु धूल आदि से व मेघाच्छन्न आकाश होने के कारण उसके मन में तद्विपयक सन्देह है, किसी अन्य से पूछा, उसके कहने पर विश्वास करके आहार ग्रहण कर लिया और उसे करने लगे, तब उस समय साधक को मेघ आदि के हट जाने से ज्ञात हुआ कि अभी तो सूर्योदय नहीं हुआ अथवा सूर्य अस्त हो चुका है। उस समय यदि वह साधक मुख में डाला आहार वाहिर निकाल दे, हाथ में लिया हुआ छोड़ दे और पात्र में पड़ा परठ दे, तो उस साधक को रात्रिभोजन का कोई दोप नहीं लगता। किन्तु यदि वह साधक उस समय आहार करता जाता है (कि दोष तो लग ही चुका, आहार कर ही लें) अथवा दूसरे किसी महाव्रती को देवे तो उसे गुरु-चौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

२५. भिक्खू य उग्गयवित्तीए अणत्थमियसंकप्पे असंथडिए निव्विइगिच्छे असणं वा ४ पडिग्गाहेत्ता आहारमाहारेमाणे अह पच्छा

[illegible] — [illegible] [illegible], [illegible]

[illegible]

[illegible]

— [illegible]

सूर्योदय के पश्चात् एवं सूर्यास्त के पूर्व आहार ग्रहण की प्रतिज्ञा वाला साधक, रोग के कारण अथवा [illegible] आदि से शरीर से असमर्थ है परन्तु आहार [illegible] समय सूर्योदय एवं सूर्यास्त विषयक [illegible] में कोई सन्देह नहीं। आहार [illegible] में लिया। [illegible] करते हुए। [illegible] में निश्चय हुआ कि सूर्योदय नहीं हुआ अथवा सूर्यास्त हो चुका है, उस समय तत्काल यदि वह आहार मुँह में [illegible] है, [illegible] हाथ का आहार [illegible] है और पात्र का [illegible] निकाल दे; [illegible] तो उसे प्रायश्चित्त का कोई [illegible] दोष नहीं लगता, उसे कोई प्रायश्चित्त नहीं आता किन्तु [illegible] सूर्योदय एवं सूर्यास्त विषयक निश्चय होने पर भी यदि [illegible] (दोष तो [illegible]) [illegible] प्रायश्चित्त आता है।।

१८. भिक्खू य [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

— [illegible]

२७. इह खलु निग्गंथस्स वा निग्गंथीए वा राओ वा वियाले वा सपाणे सभोयणे उग्गाले आगच्छेज्जा, तं विगिंचमाणे विसोहेमाणे नाइक्कमइ; तं उग्गिलित्ता पच्चोगिलमाणे राइभोयणपडिसेवणपत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ॥ —बृहत्कल्प सूत्र ५।१०॥

किसी साधक को सूर्यास्त के पश्चात् उग्गाल आजाए तो वह बाहिर थूक दे तो कोई प्रायश्चित्त नहीं आता किन्तु यदि वह अन्दर ही निगल जाए तो उसे रात्रिभोजन का दोष लगता है और उसे गुरुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है॥

२८. तएणं ते बहवे णिग्गंथा य णिग्गंथीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म, समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ २ तस्स ठाणस्स आलोयंति पडिक्कमंति जाव अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जंति ॥ —दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र १०।५६॥

[illegible] में साधु साध्वी, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी [illegible] में नियमों का [illegible] और [illegible] और [illegible] वान् को वन्दना नमस्कार की और [illegible] निदान किया था उसकी [illegible] [illegible] को [illegible] प्रतिक्रमण किया, [illegible] उसका [illegible] [illegible] निन्दना की और प्रतिक्रमण किया, [illegible] उसका [illegible] [illegible] अङ्गीकार किया ॥

इस प्रकार [illegible] निदान, [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] के [illegible] प्रमाद के कारण [illegible] के [illegible] आलोचना [illegible] और [illegible] प्रमाद के कारण [illegible] का वर्णन इस प्रकार है—

१. से [illegible] —[illegible]

[illegible] ॥

जो [illegible] [illegible] है, [illegible] है और [illegible] का [illegible] है ॥

[illegible] का [illegible] करता है ॥

२. से [illegible] —[illegible]

[illegible] ॥

जो [illegible]

[illegible]

[illegible] है ॥

[illegible]

* [illegible]

[illegible] है —

११. जे भिक्खू परं बीभावेइ, बीभावेंतं वा साइज्जइ; जे भि
विम्हावेइ, विम्हावेंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ, चाउ
परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ॥

—निशीथ सूत्र ११।६

जो साधक दूसरों को भय दिलाता है एवं उन्हें विस्म
डालता है और इसे अच्छा समझता है तो उसे गुरुचौमासी
प्रायश्चित्त आता है ॥

१२. जे भिक्खू गिहि-मत्ते भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ, तं सेव
आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ॥ —निशीथ सूत्र १२।

जो साधक गृहस्थ के पात्र में आहार करता है और क
वाले को अच्छा समझता है तो उसे लघुचौमासी का प्रायश्चि
आता है ॥

१३. जे भिक्खू अन्नउत्थिएण वा गारत्थिएण वा उवहिं वहावेइ
वहावंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं

—निशीथ सूत्र १२।४०॥

जो साधक अन्यतीर्थी तथा गृहस्थ को अपना सामान
उठवाता है और उठवाने वालों को अच्छा समझता है तो उसे
लघुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

१४. जे भिक्खू महानईओ उद्दिट्ठाओ गणियाओ वञ्जियाओ अंतो-
मासस्स दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो वा उत्तरइ वा संतरइ वा, उत्तरंतं वा संतरंतं
वा साइज्जइ, तं जहा—गंगा, जउणा, सरऊ, एरावई, मही; तं सेवमाणे
आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ॥

—निशीथ सूत्र १२।४१॥

जो साधक एक मास के अन्दर दो बार बड़ी नदियों में
उतरे एवं उन्हें पार करे और ऐसा करने वाले को अच्छा समझे
तो उसे लघुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

१५. जे भिक्खू [illegible] [illegible], [illegible] वा [illegible], न [illegible] [illegible] परिहारट्ठाणं [illegible] ॥ —निसीह सुत्त [illegible]

जो साधक [illegible] से अपना [illegible] [illegible] है और [illegible] [illegible] [illegible] है तो उसे लघुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है ।

१६. जे भिक्खू [illegible] [illegible], [illegible] वा [illegible], न [illegible] [illegible] [illegible] परिहारट्ठाणं [illegible] ॥ —निसीह सुत्त [illegible]

जो साधक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है तो [illegible] [illegible] है और [illegible] करने वाले को [illegible] [illegible] [illegible] लघुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

१७. जे भिक्खू [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वा [illegible], न [illegible] [illegible] [illegible] परिहारट्ठाणं [illegible] ॥ —निसीह सुत्त [illegible]

जो साधक अपने [illegible] को [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है तो उसे [illegible] [illegible] करने वाले को [illegible] का प्रायश्चित्त आता है ॥

१८. जे भिक्खू [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] वा [illegible], [illegible] वा [illegible], न [illegible] [illegible] वा, [illegible] वा, [illegible] वा, [illegible] वा, [illegible] वा, [illegible] [illegible] [illegible] परिहारट्ठाणं [illegible] ॥ —निसीह सुत्त [illegible]

जो साधक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] का प्रायश्चित्त आता है ॥

—निशीथ सूत्र १५।१३,१४॥

जो साधक अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से अपने पाँव साफ करवाता है तथा, उन से दबवाता है और ऐसा करवाने वाले अन्य साधकों को अच्छा समझता है तो उसे लघुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

२१. जे भिक्खू अन्नउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो कायंसि गंडं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं आच्छिंदेज्ज वा विच्छिंदेज्ज वा, आच्छिंदित्ता विच्छिंदित्ता पूयं वा सोणियं वा नीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, नीहरित्ता विसोहेत्ता सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलित्ता पधोइत्ता अन्नयरेणं आलेवण-जाएणं आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा आलिंपित्ता विलिंपित्ता तेल्लेण वा, घएण वा, वसाए वा, नवणीएण वा, अब्भङ्गेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भङ्गित्ता मक्खित्ता अन्नयरेण धूवण-जाएणं धूवेज्ज वा पधूवेज्ज वा, एवं करंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ॥

—निशीथ सूत्र १५।३६॥

जो साधक, अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से अपने शरीर में गण्ड, मेद, फुन्सी, मस्सा=मसे, भगंदर, (नालिका-[illegible]) को किसी तीक्ष्ण शस्त्र से एक बार छेदाने अथवा बारम्बार छेदाये, एक बार अथवा बारम्बार छिन्न कर उन [illegible] पीप रक्तादि निकलवा कर विशुद्ध कराये, विशुद्ध कराकर शीतल अथवा उष्ण जल द्वारा एक बार धुलवाए अथवा बारम्बार धुलवाए, फिर मल्हम लगवाए, बारम्बार लगवाए, और [illegible] किसी द्रव्य से अभ्यङ्गन मर्दन करवाए, इस प्रकार धूप दिलवाए, अथवा बारम्बार धूप दिलवाए, इस प्रकार जो कोई साधक करवाता है और उसे करने वाले का अनुमोदन करता है, उसे चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है ॥

१२. जे भिक्खू [illegible] [illegible] ...
[illegible]
[illegible]
[illegible] —निशीथ सूत्र [illegible]

जो साधक, [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] है ॥

१३. जे भिक्खू [illegible]
[illegible] —निशीथ सूत्र [illegible]

जो साधक प्रमाद में पड़ा रह कर, आस-पास अन्यतीर्थी एवं गृहस्थों के आने-जाने के स्थान में आहार-पानी करता है और ऐसे स्थान पर आहार-पानी करने वाले को अच्छा समझता है तो उसे लघुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

२४. जे भिक्खू असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा उसिणुसिणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गहंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ॥

—निशीथ सूत्र १७।१३१॥

जो साधक, अत्युष्ण से भी अधिक गरमागरम आहार-पानी ग्रहण करता है, और इसे अच्छा समझता है तो उसे लघुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

२५. जे भिक्खू सागारिय-पिंडं गिण्हइ; गिण्हंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ॥

—निशीथ सूत्र २।३६॥

जो साधक शय्यातर का आहार ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने को कहता है या इसे अच्छा समझता है तो उसे लघुमास का प्रायश्चित्त आता है ॥

२६. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा सागारिय-पिंडं बहिया नीहडं असंसट्ठं संसट्ठं करेत्तए। जे खलु निग्गंथे वा निग्गंथी वा सागारियपिंडं बहिया नीहडं असंसट्ठं संसट्ठं करेइ करेंतं वा साइज्जइ, से दुहओ वीइक्कम-माणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ॥

—बृहत्कल्प सूत्र २।१८॥

शय्यातर के घर के आहार में से बाहिर निकाला हुआ अंश जो कि अभी तक दूसरे के अधिकार में नहीं हुआ और उसके आहार में नहीं मिला लिया गया, तो वह शय्यातर के आहार का अंश साधु-साध्वी को ग्रहण करना नहीं कल्पता।

[illegible] साध्वी उसे ग्रहण करने के लिये [illegible] [illegible] निमित्त [illegible], और साधु-साध्वी को [illegible] [illegible] (साधु-साध्वी [illegible]) तो [illegible] और [illegible] आज्ञा का उल्लङ्घन करता है और [illegible] का प्रायश्चित्त आता है ॥

[illegible] [illegible]

[illegible]

—[illegible] [illegible]

[illegible] ॥

[illegible] [illegible] आता है ॥

[illegible] [illegible]

[illegible] [illegible]

[illegible]

अवस्था की अशक्तता के कारण उसे तप प्रायश्चित्त न देकर छेद-प्रायश्चित्त दिया गया, ये बदल के प्रायश्चित्त हुए। किसी प्रायश्चित्त का बदल न होकर छेद प्रायश्चित्त उसे आता है जो विना कारण अपवाद-मार्ग का आसेवन करता है॥

उत्सर्ग-मार्ग और अपवाद-मार्ग का क्या वास्तविक स्वरूप है? और इस के किस प्रकार प्रायश्चित्त होते हैं? ये सब बातें इस प्रकार जाननी चाहियें—

उत्सर्ग का अर्थ है—'उत्सृज्य विशेष-प्रसङ्गान् यः सामान्य-नियमः स उत्सर्गः।' हीनतर तथा उच्चतर विशेषप्रसङ्गों को छोड़कर जो सामान्य विधि होती है उसे उत्सर्ग-मार्ग कहते हैं और जो असामान्य अवस्था में आचरण किया जाए उसे अपवाद-मार्ग कहते हैं।

उच्चतर विशेषप्रसङ्गों के अपवाद—

(१) वेश्या के सानिध्य में वास नहीं करना * यह उत्सर्ग-मार्ग है, किन्तु स्थूलभद्र जी महाराज ने वेश्या के घर चातुर्मास किया। उन की आत्मा विशेष बलवान थी इस लिये यह अपवाद-रूप था।

(२) कोई साधक सहसा बारहवीं पडिमा धारण नहीं करता यह सामान्य नियम उत्सर्ग-विधि है परन्तु श्री गजसुकुमार जी महाराज ने दीक्षा लेते ही बारहवीं पडिमा का वाहन किया और अपने लक्ष्य को प्राप्ति की। उन में विशिष्ट आत्मशक्ति होने के कारण यह अपवाद-विधि थी।

---

* न चरेज्ज वेस-सामंते, बंभचेरवसाणुए।
बंभयारिस्स दंतस्स, होज्जा तत्थ विसोत्तिआ॥

दश॰ ५।१।९॥

(३) अनार्य क्षेत्र में विहार नहीं करना यह उत्सर्ग-मार्ग है परन्तु विनय साधन के लिये अनार्य क्षेत्र में विहार किया भी जाता है जो कि अपवाद-रूप है।[1]

(४) सर्दी के तौर पर प्रासुक जल भी नहीं पिया जाता; [illegible] पानी की आशंका का व्यवहार हो जाता है।[2]

(५) ज्येष्ठ आषाढ़ की तीव्र उष्णता में रात्रि को गिरने वाली ओस नम्र हो जाती है परन्तु महाव्रती साधक बारह ही महीने [illegible] की छाया से बाहिर जाते समय अपने शरीर को [illegible] होता है॥

द्वितीय श्रमणों के अपवाद[3]—

(१) साधक सचित्त जल का संघट्टन नहीं करता यह उत्सर्ग-मार्ग है परन्तु अन्य मार्ग न होने पर घुटनों से नीचे

---

१. [illegible] —बृहत्कल्प सूत्र [illegible]॥

२. [illegible] —बृहत्कल्प सूत्र [illegible]॥

३. [illegible]

(३) अनार्य क्षेत्र में विहार नहीं करना यह उत्सर्ग-मार्ग है, परन्तु विशेष साधन के लिये अनार्य क्षेत्र में विहार किया भी जाता है जो कि अपवाद-रूप है।[१]

(४) नदी के तीर पर आतापना भी नहीं किया जाता; क्योंकि चलने वालों की आशंका का व्यवहार हो जाता है।[२]

(५) ज्येष्ठ आषाढ की तीव्र उष्णता में रात्रि को निर्ग्रंथ साधु पानी पीना अलग हो जाता है, परन्तु महाव्रती साधक बाहर ही नहीं रात्रि को उष्णता में बाहिर जाते समय अपने शरीर को ढाँकता है॥

टीकाकार भगवान् के अपवाद[३]—

(१) साधक सचित्त जल का संघट्ट नहीं करता यह उत्सर्ग-मार्ग है, परन्तु अन्य मार्ग न होने पर नदियों में होकर

१. [illegible]

२. [illegible]

३. [illegible]

(११) जिस उपाश्रय में रात्रि-भर ज्योति जलती रहे उस उपाश्रय में साधक नहीं ठहरा करते परन्तु अन्य स्थान उपलब्ध न होने पर एक दो रात्रि पर्यन्त उस स्थान में ठहरा जा सकता है।[1]

(१२) साधक गृहस्थ के रहने के मकान में अल्पकाल भी न ठहरे परन्तु वृद्धत्व, रोग और तपस्या के कारण ठहर सकता है।[2]

(१३) साधक गोचरी को जाते समय लघुशङ्कादि से युक्त न हो, यदि रास्ते में बाधा हो ही जाए तो स्थान के स्वामी की आज्ञा लेकर प्रासुक स्थान देख कर निवृत्त हो सकता है।[3]

सहसा वा बलसा वा बाहाए गहाय रायंतेउरमणुपविसेज्जा ४, बहिया वणं आरामगयं वा उज्जाणगयं वा रायंतेउरजणो सव्वओसमंता संपरिक्खिवित्ताणं निविसेज्जा ५, इच्चेहिं पंचहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे रायंतेउरमणुपविसमाणे नाइक्कमइ ॥

—ठाणांग सूत्र ५।२।२॥

१. उवस्सयस्स अंतोवगडाए सव्वराइए जोई झियाएज्जा, नो कप्पइ निग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा अहालन्दमवि वत्थए। हुरत्था य उवस्सयं पडिलेहमाणे नो लभेज्जा, एवं से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए॥

—बृहत्कल्प सूत्र २।६॥

२. तिण्हमन्नयरागस्स, निसिज्जा जस्स कप्पइ।
जराए अभिभूअस्स, वाहिअस्स तवस्सिणो ॥

—दशवैकालिक सूत्र ६।६०॥

३. गोअरग्गपविट्ठो अ, वच्चमुत्तं न धारए।
ओगासं फासुअं नच्चा, अणुन्नविय वोसिरे ॥

—दशवैकालिक सूत्र ५।१।१६॥

(१४) महाव्रती साधक भिक्षा ला कर अपने उपाश्रय में भुञ्जते हैं परन्तु कोई वृद्ध, रोगी और तपस्वी साधु आदि हों तो, स्थान के स्वामी की आज्ञा लेकर वहीं भी भुञ्ज सकता है।[1]

(१५) साधक लोग एक बार भिक्षा लाकर उसी समय दुबारा नहीं जाया करते, परन्तु लाए गए आहार द्वारा निर्वाह न होने पर यदि किसी से क्षुधा सहन नहीं होती हो तो दुबारा भी जा सकता है।[2]

(१६) अन्य मार्ग न होने पर विषम-मार्ग से चलते यदि गिर फिसल जाए तो वृक्षों आदि का अवलम्बन ले सकता है।[3]

---

१. सिया य गोयरग्गगओ, इच्छिज्जा परिभोत्तुयं ।
कुट्ठगं भित्तिमूलं वा, पडिलेहित्ताण फासुयं ॥
—दशवैकालिक सूत्र ५।१।८२

२. (क) सेज्जा निसीहियाए, समावन्नो य गोयरे ।
अयावयट्ठा भोच्चाणं, जइ तेणं न संथरे ॥
तओ कारणमुप्पन्ने, भत्तपाणं गवेसए ।
विहिणा पुव्वउत्तेण, इमेणं उत्तरेण य ॥
—दशवैकालिक सूत्र ५।२।२,३

(ख) [illegible] ॥
—[illegible]

३. [illegible]

(१९) नवमें तथा दसवें प्रायश्चित्त वाले को गृहस्थी बना कर नई दीक्षा दी जाती है किन्तु विशेषावस्था में गण की प्रतीति के लिये बिना गृहस्थी बनाए भी नई दीक्षा देकर नवमां तथा दसवां प्रायश्चित्त दे दिया जाता है।[1]

(२०) सांभोगिक होने पर भी साधु साध्वी एक दूसरे से योग्य प्रकार की वैयावृत्य नहीं करवा सकते, किन्तु कोई वैयावृत्य करने वाला न हो तो करवा भी सकते हैं।[2]

इस प्रकार व्यवहार सूत्र २।६से१७ में रोग के कारण, बृहत्कल्प सूत्र ४।१८से२० में पर्युषित का त्याग और व्यवहार सूत्र ८।११ में शय्या की दुर्लभता तथा बृहत्कल्प ४।२६

---

१. अणवट्ठप्पं भिक्खुं अगिहिभूयं नो कप्पइ तस्स गणा-वच्छेइयस्स उवट्ठावित्तए। अणवट्ठप्पं भिक्खुं गिहिभूयं कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स उवट्ठावित्तए।

पारंचियं भिक्खुं अगिहिभूयं नो कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स उवट्ठावित्तए। पारंचियं भिक्खुं गिहिभूयं कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स उवट्ठावित्तए।

अणवट्ठप्पं भिक्खुं अगिहिभूयं वा गिहिभूयं वा कप्पइ तस्स गणा-वच्छेइयस्स उवट्ठावित्तए, जहा तस्स गणस्स पत्तियं सिया।

पारंचियं भिक्खुं अगिहिभूयं वा गिहिभूयं वा कप्पइ तस्स गणा-वच्छेइयस्स उवट्ठावित्तए, जहा तस्स गणस्स पत्तियं सिया॥

—व्यवहार सूत्र २।२६से२९॥

२. जे निग्गंथा य निग्गंथीओ य संभोइया सिया, नो ण्हं कप्पइ अन्नमन्नेणं वेयावच्चं कारवेत्तए। अत्थि य इत्थ केइ वेयावच्चकरे, नत्थि य इत्थ केइ वेयावच्चकरे एवं ण्हं कप्पइ अन्नमन्नेणं वेयावच्चं कारवेत्तए॥

—व्यवहार सूत्र ५।२१॥

[illegible] करता हो, [illegible]
प्रायश्चित्त देकर उसे गण में उपस्थापित करे ॥

इसी प्रकार गण को छोड़ कर कोई साधु यथाच्छन्द-विहारी, कुशील-विहारी, अवसन्न-विहारी तथा संसक्त-विहारी हो जाए और वह पुनः गण में आना चाहे, यदि उस में संयम-पालन के भाव जागृत हों तो उसे आलोचना, प्रतिक्रमण, तप और दीक्षा-छेद के प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध करके संयम में उपस्थापन करना चाहिये ॥

७. भिक्खू य अहिगरणं कट्टु, तं अहिगरणं अविओसवेत्ता, इच्छेज्जा अन्नं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, कप्पइ तस्स पञ्च-राइंदियाइं छेयं कट्टु परिणिव्वाविय २ तमेव गणं पडिनिज्जाएयव्वे सिया, जहा वा तस्स गणस्स पत्तियं सिया ॥

—बृहत्कल्प सूत्र ५।५॥

कोई साधक क्लेश झगड़ा करके और उस क्लेश को उपशान्त किये विना अन्य संघाटक में मिलना चाहे, तो उसे पाञ्च दिन के दीक्षा-छेद का प्रायश्चित्त देकर अपने पास रखना कल्पता है। इस प्रकार रख कर फिर उचितावसर पर कोमल वचनों द्वारा उसे समझा-बुझा कर वापिस उसी संघाटक में मिला देना चाहिये जहां से वह आया था जिससे गच्छ में प्रतीति वनी रहे ॥

८. से गामंसि वा, नगरंसि वा, निगमंसि वा, रायहाणिंसि वा एगवगडाए, एगदुवाराए, एगनिक्खमणपवेसाए, नो कप्पइ बहूणं अगडसुयाणं एगयओ वत्थए। अत्थि या-इ यहं केइ आयार-पकप्प-धरे, नत्थि यहं केइ छेए वा परिहारे वा; नत्थि या-इ यहं केइ आयार-पकप्प-धरे से सन्तरा छेए वा परिहारे वा ॥

[illegible]

छोटे ग्राम में, नगर में, बड़े नगर में [illegible]

[illegible]

[illegible] है ॥

१. [illegible]

[illegible] साधक को, [illegible] आदि से गणधारण कर, [illegible] कर विचरण करने की इच्छा हो तो स्थविर भगवान् से बिना पूछे उसे ऐसा करना नहीं कल्पता, [illegible] कर, और वे गणधारण कर विचरण करने की आज्ञा प्रदान आज्ञा प्रदान कर दें, तो उसे गणधारण कर विचरण करना कल्पता है; यदि स्थविर भगवान् आज्ञा न देवें, तो गणधारण कर विचरण करना नहीं कल्पता, यदि वह साधक स्थविरों की आज्ञा बिना गणधारण करके विचरण करे तो उसे उतने ही दिन का दीक्षा-छेद या पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त आता है ॥

१०. बहवे साहम्मिया इच्छेज्जा एगयओ अभिन्न-चारियं चारए; नो ण्हं, कप्पइ थेरे अणापुच्छित्ता एगयओ अभिन्न-चारियं चारए, कप्पइ ण्हं थेरे आपुच्छित्ता एगयओ अभिन्न-चारियं चारए। थेरा य से वियरेज्जा, एवं ण्हं कप्पइ एगयओ अभिन्न-चारियं चारए; थेरा य से नो वियरेज्जा, एवं ण्हं नो कप्पइ एगयओ अभिन्नचारियं चारए। जे तत्थ थेरेहिं अविइण्णे एगयओ अभिन्न-चारियं चरंति, से सन्तरा छेए वा परिहारे वा ॥

—व्यवहार सूत्र ४।१६॥

बहुत से सार्धमिक साधक, अभिन्नरूप एकत्र होकर विचरण करना चाहें, तो उन्हें स्थविर भगवान् की आज्ञा लिये विना ऐसा करना नहीं कल्पता, हां, स्थविरों से पूछ कर और वे आज्ञा प्रदान कर देवें, तो अभिन्नरूप से एकत्र होकर विचरण करना कल्पता है, यदि वे आज्ञा न देवें तो नहीं कल्पता; जो साधक विना आज्ञा लिये अभिन्नरूप से एकत्र होकर जितने दिन विचरण करें तो उन्हें उतने ही दिन का दीक्षा-छेद व पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त आता है ॥

११. गामाणुगामं दूइज्जमाणो भिक्खू य जं पुरओ कट्टु विहरइ, आहच्च विसुंभेज्जा, अत्थि या-इ त्थ अन्ने केइ उवसंपज्जणारिहे, से उवसंपज्जि-

[illegible]

[illegible] — [illegible] सूत्र ४।३।७

[illegible] ॥

[illegible] (सूत्र ११) ... [illegible] ॥

— [illegible] सूत्र ४।३।४

[illegible] हैं, और [illegible] कोई [illegible] कोई [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

'हे आर्ये! एक-दो रात्रि [illegible] भी [illegible] और अधिक [illegible] किन्तु [illegible] नहीं, जो साध्वी उससे उपरान्त जितने दिन [illegible] दिन का दीक्षा-छेद व पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त आता है ॥

इसी प्रकार चातुर्मास काल में ठहरे साध्वियों की अग्रगामी साध्वी काल-धर्म को प्राप्त हो जाए तो उसे भी उपरोक्तानुसार करना कल्पता है जो मार्ग में एक-दो रात्रि उपरान्त ठहरे तो उसे उतने ही दिन का दीक्षा-छेद व पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त आता है ॥

१२. गामाणुगामं दूइज्जमाणी निग्गंथी य जं पुरओ काउं विहरइ सा आहच्च वीसुंभेज्जा, अत्थि याइं त्थ काइ अन्ना उवसंपज्जणारिहा, सा उवसंपज्जियव्वा, नत्थि याइं त्थ काइ अन्ना उवसंपज्जणारिहा, तीसे य अप्पणो कप्पाए असमत्ते, कप्पइ सा एगराइयाए पडिमाए जण्णं जण्णं दिसं अन्नाओ साहम्मिणीओ विहरंति तण्णं तण्णं दिसं उवलित्तए। नो सा कप्पइ तत्थ विहारवत्तियं वत्थए, कप्पइ सा तत्थ कारणवत्तियं वत्थए। तंसि च णं कारणंसि निट्ठियंसि परो वएज्जा 'वसाहि अज्जे! एगरायं वा दुरायं वा' एवं सा कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए; नो सा कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए। जा तत्थ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वसइ, सा सन्तरा छेए वा परिहारे वा ॥

—व्यवहार सूत्र ५।११॥

वासावासं पज्जोसविया निग्गंथी…(जहा ११)…छेए वा परिहारे वा ॥

—व्यवहार सूत्र ५।१२॥

साधु के प्रकरण में जैसा अर्थ किया गया है उसी प्रकार यहां भी साध्वी के रूप में समझ लेना चाहिये। विशेष इतना है कि 'नो कप्पइ निग्गंथीए एगाणियाए होत्तए'—वृहत्कल्प सूत्र ५।१५॥ के अनुसार कल्पाचार में समर्थ होते हुए भी और

स्थान न मिलने पर भी दूसरी जगह जाते एकाकी न जावे, कम-से-कम दो मिल कर घोर मार्ग में एक-एक रात्रि ठहरने की प्रतिज्ञा धारण करके जावें ॥

१२. सागारिय-उवस्सए [illegible] 'अज्जो! [illegible]' [illegible] ॥

—व्यवहार सूत्र ८।१३॥

[illegible] ···· (सूत्र १२ [illegible]) ···· [illegible] ॥

—व्यवहार सूत्र ८।१४॥

[illegible]

जो आगम शम को छोड़ दिया (देश में चढ़ाये हुए) [illegible] [illegible] [illegible] खाना, उपवास, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

[II] [illegible]

[illegible] ॥

जो [illegible] [illegible]

[III] [illegible]

[illegible] के [illegible]

...दि [illegible], अपने [illegible] एक [illegible] के [illegible] दे... संयम को छोड़ [illegible] और पुनः [illegible] ऐसा नहीं ... योग्य होने पर [illegible] [illegible] जाने के [illegible] [illegible] यदि ...[illegible], तो—[illegible] एक [illegible] ठीक हो तो [illegible] ...[illegible] में [illegible] [illegible] ...दि कोई भी पद लिया जा सकता है ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ...[illegible] पृष्ठ [illegible]

[VI] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ... (सन् [illegible]) ...[illegible] ॥

[illegible] [illegible] ...[illegible] पृष्ठ [illegible]

[VII] [illegible] ... (सन् [illegible]) ...[illegible] ॥ [illegible] [illegible] ॥

[illegible] [illegible] ... (सन् [illegible]) ...

(ग) (i) [illegible] ...[illegible] पृष्ठ [illegible]

[illegible] ॥

[illegible]

कोई साधक गण को छोड़ कर अन्यगणी वृत्ति कर ले अथवा अन्यगणी वृत्ति न भी करे, परन्तु आवेश में आकर साधु-वेष को छोड़ दे और गृहस्थ-वेष व अन्यतीर्थी के वेष को धारण कर के [illegible] पुनः उसी गण में सम्मिलित [illegible] प्रायश्चित्त नहीं दिया जाता [illegible] 'मूल' प्रायश्चित्त आता है। [illegible] आलोचना करवा कर संघ में उपस्थापन किया जाता है ॥

[[illegible] 'मूल' प्रायश्चित्त आता है ।]

५. संयम से भ्रष्ट हो कर [illegible] श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने [illegible] ॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

...अणवट्ठप्पं ... उवट्ठावणाए ॥
पारंचियं भिक्खुं गिहिभूयं कप्पइ तस्स उवट्ठावेत्तए ॥
—बृहत्कल्प सूत्र ४।१४, १५॥

अर्थात् अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त प्राप्त को बिना गृहस्थ बनाए संयम में उपस्थापन करना अथवा पाराञ्चिक को भी नहीं कल्पता, पाराञ्चिक को भी उसे गृहस्थी बना कर फिर नई दीक्षा देनी चाहिये ॥

नवमें प्रायश्चित्त के अधिकारी—

तओ अणवट्ठप्पा पण्णत्ता तं जहा—साहम्मियाणं तेण्णं करेमाणे १, अन्नधम्मियाणं तेण्णं करेमाणे २, हत्थातालं दलयमाणे ३॥
—ठाणांग सूत्र ३।४।१३॥, —बृहत्कल्प सूत्र ४।३॥

१. स्वधर्मी = स्वपक्ष के साधु साध्वी के भंडोपकरण वस्त्र, पात्र, शास्त्र तथा शिष्य की चोरी करने वाले—बिना पूछे लेने वाले साधक को 'अनवस्थाप्य' नामक नवम प्रायश्चित्त आता है।

२. परधर्मी = परपक्ष अर्थात् अन्यतीर्थी साधु, अथवा स्वमत तथा परमत दोनों प्रकार के गृहस्थों[1] के भण्डोपकरण की चोरी करने वाले साधक को 'अनवस्थाप्य' प्रायश्चित्त आता है।

३. परस्पर में मारामारी और लड़ाई करने वाले [अथवा अष्टांग निमित्त की प्ररूपणा करने वाले[2]] साधक को नवम 'अनवस्थाप्य' प्रायश्चित्त आता है। (बताया हुआ ज्योतिष,

१. साधु-धर्म की अपेक्षा सब गृहस्थ पर-धर्म व पर-पक्ष में आते हैं।

२. बृहत्कल्प सूत्र पृष्ठ ४७॥ में पूज्य अमोलक ऋषि जी महाराज ॥

गणित आदि में त्रुटि रह जाने पर पूरा न करने से आगमों की ओर जिन-शासन की निन्दा होती है)

आठवें 'मूल' प्रायश्चित्त में दोष प्रकट नहीं होता और इस नवम अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त में दोष प्रकट रूप में (openly, in public) होता है इस लिए उसे लोगों के समक्ष गृहस्थ का वेष पहिना कर फिर नई दीक्षा दी जाती है। 'आदि' शब्द से प्रकट रूप में झूठ बोलने वाले, कुशील सेवन करने वाले आदि प्रायश्चित्तियों को भी यह 'अनवस्थाप्य' नवम प्रायश्चित्त दिया जाता है॥

१०. पाराञ्चिक—

तीर्थंकरादीनां बहुश आशातनाकारिणि, नृपघातके, नृपाग्रमहिषीप्रतिसेवके, स्वपरपक्ष-कषाय-विषय-प्रदुष्टे, स्त्यानर्द्धि निद्रावति पाराञ्चिकप्रायश्चित्तम्। स त्वव्यक्तलिङ्गधारी जिनकल्पिवत् क्षेत्राद्बहिः स्थाप्यते द्वादशवर्षाणि, यदि प्रभावनां करोति तदा शीघ्रमेव प्रवेश्यते गच्छे शुद्धत्वात् ॥

नई दीक्षा एवं गृहस्थ-वेष के अतिरिक्त जो दीर्घ समय (बारह मास उत्कृष्ट बारह वर्ष) तक विधि रूप से रहकर जो प्रायश्चित्त का पार पाता है उसे पाराञ्चिक नामक दसवां प्रायश्चित्त कहते हैं।

जो दोष, जितना प्रकट-रूप में होता है उसका प्रायश्चित्त भी उतना ही प्रकट-रूप में दिया जाता है। यदि ऐसा न किया जाए तो अपने तथा बाहिर के लोगों में यह अपवाद फैल जाए कि 'इन में तो ऐसे ऐसे कुकर्म करने वाले भी छिपे बैठे हैं।'

इस प्रकार इस वेष की एवं जिन-शासन की निन्दा होती है। अतः जो दोष जितने अंश में प्रकट-रूप हो, उसका प्रायश्चित्त भी उतने ही प्रकटरूप में होना चाहिए। इसलिए दसवें प्रायश्चित्त का अधिकारी साधुवेष छोड़ देता है और गृहस्थ का कोई विशिष्ट वेष बनाकर (मस्तक पर चार अंगुल प्रमाण का वस्त्र बांध कर) बारह मास और उत्कृष्ट बारह वर्ष पर्यन्त साधु के सब नियमों का यथाविधि पालन करता हुआ और ग्रामानुग्राम विचरण करता हुआ लोगों के द्वारा अनादर अपमान को समभाव-पूर्वक सहन करता हुआ उतने समय का पार पाता है, उस अवधि में यदि वह जिन-शासन की प्रभावना करे तो समय घटा भी दिया जाता है, इस प्रकार समय पूरा करके वह नई दीक्षा धारण करता है॥

दसवें प्रायश्चित्त के अधिकारी—

तओ पारंचिया पण्णत्ता तंजहा—दुट्ठे पारंचिए १, पमत्ते पारंचिए २, अण्णमण्णं करेमाणे पारंचिए ३॥

—ठाणांग सूत्र ३।४।१२॥, —बृहत्कल्प सूत्र ४।२॥

१. दुष्ट दो प्रकार के होते हैं, कषायदुष्ट और विषय-दुष्ट। कषायदुष्ट के दो भेद—स्वपक्ष-कषायदुष्ट और परपक्ष-कषायदुष्ट। स्वपक्ष-कषायदुष्ट के भी पाञ्च भेद प्रतिपादन किये गए हैं—

पंचहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे साहम्मियं पारंचियं करेमाणे णाइक्कमइ तंजहा—कुले वसइ कुलस्स भेयाए अब्भुट्ठेत्ता भवइ, गणस्स भेयाए अब्भुट्ठेत्ता भवइ, हिंसप्पेही, छिद्दप्पेही, अभिक्खणं अभिक्खणं पसिणाए तेणाइ पउत्ता भवइ॥ —ठाणांग सूत्र ५।१।१४॥

(क) जिस कुल में रह रहा है, उसी में फूट डलवा कर

३. साधु साधु के साथ और साध्वी साध्वी के साथ परस्पर विषम सेवन करे।

इन सब को दसवां 'पाराञ्चिक' प्रायश्चित्त लेना होता है॥

तीर्थंकर देव की, केवलि-प्ररूपित शास्त्र एवं जिन-शासन की बहुत बार आशातना करने वाला भी इस दसवें पाराञ्चिक प्रायश्चित्त का अनुष्ठान कर अपनी आत्मा को शुद्ध बना सकता है॥

कुछ गीतार्थों की धारणा है कि नवम प्रायश्चित्त उपाध्याय को तथा दशम पाराञ्चिक प्रायश्चित्त आचार्य को दिया जाता है।

किसी का कहना है कि ये दोनों प्रायश्चित्त, चौदहपूर्व का ज्ञान और प्रथम संहनन न होने से तप की अपेक्षा व्यवच्छेद हो चुके हैं, और कोई कहता है कि यह दसवां पाराञ्चिक प्रायश्चित्त पूर्णतया विच्छेद है।

किन्तु पृष्ठ ५७ में व्यवहार सूत्र २।२२,२३ के अनुसार अपवाद रूप में नवमें तथा दशमें प्रायश्चित्ती को आठवां मूल प्रायश्चित्त भी दे दिया जाता है॥

एवं सदयं दिज्जति जेणं सो संजमे थिरो होति।
न य सव्वहा न दिज्जति अणवत्थपसंगदोसातो॥

—व्यवहार सूत्र उद्देश-१० भाष्यगाथा ३८०॥

तालिका

सामान्य प्रमाद की कोटियां

(१) अतिक्रम का प्रायश्चित्त 'आलोचना'।

(२) व्यतिक्रम का प्रायश्चित्त 'प्रतिक्रमण' (मिथ्य दुष्कृत देना)।

(३) अतिचार व सामान्य प्रमाद के अनाचार का प्रायश्चित्त 'तदुभय'।

(४) उपयोग भङ्ग के अनाचार का प्रायश्चित्त 'विवेक'।

विशिष्ट प्रमाद की कोटियां

(५) केवल काया, केवल वचन व केवल मन के अनाचारों का प्रायश्चित्त 'व्युत्सर्ग'।

(६) विशिष्ट प्रमाद से उद्भूत अतिचार व अनाचारों का प्रायश्चित्त 'तप'।

(७) कुछ जान-बूझ कर सेवित अनाचार का प्रायश्चित्त 'छेद'।

(८) सर्वथा जान-बूझ कर आसेवित अनाचार का प्रायश्चित्त 'मूल'।

(९) प्रकट रूप से जान-बूझ कर सेवित अनाचार का प्रायश्चित्त 'अनवस्थाप्य'।

(१०) महान् अनर्थोत्पादक जान-बूझ कर सेवित अनाचार का प्रायश्चित्त 'पाराञ्चिक'॥

ये प्रायश्चित्त जिन २ में हो सकते हैं वे इस प्रकार हैं—

पुलाक निर्ग्रन्थ में छः प्रायश्चित्त—आलोचना १, प्रतिक्रमण २, तदुभय ३, विवेक ४, व्युत्सर्ग ५, और तप ६ हो सकते हैं।

...त और प्रतिसेवना-कुशील में दस ही प्रायश्चित्त हो
...। परन्तु जो जिन-कल्पी हैं उनमें आदि के आठ ही हो
...हैं।
...निर्ग्रन्थ में दो प्रायश्चित्त हो सकते हैं, आलोचना और
...क।
स्नातक में केवल एक विवेक प्रायश्चित्त होता है ॥

सामायिक-चारित्री में छेद और मूल को छोड़ कर शेष आठ प्रायश्चित्त हो सकते हैं। किन्तु जो सामायिक-चारित्री जिन-कल्पी हैं उनमें आदि के छः प्रायश्चित्त ही हो सकते हैं।

छेदोपस्थापनीय-चारित्री में दस ही प्रायश्चित्त हो सकते हैं किन्तु जो छेदोपस्थापनीय जिनकल्पी हैं उनमें आदि के आठ प्रायश्चित्त ही हो सकते हैं।

परिहारविशुद्धि-चारित्री में आदि के आठ और जो परिहारविशुद्धि-चारित्री जिन-कल्पी है उसे छेद और मूल को छोड़ कर आदि के छः प्रायश्चित्त हो सकते हैं।

सूक्ष्मसम्पराय-चारित्री और यथाख्यात-चारित्री में दो प्रायश्चित्त हो सकते हैं—आलोचना और विवेक ॥

पायच्छित्ते असंतंमि,
चारित्तंपि ण चट्ठती।

चूलिका

प्रायश्चित्त दो प्रकार के होते हैं—कल्पिक और दर्पिक। आलोचना प्रायश्चित्त कल्पिक प्रायश्चित्त है[1], शेष नव प्रकार के प्रायश्चित्त सब-के-सब दर्पिक प्रायश्चित्त हैं[2],

---

१. कल्पनीय, आचरण करने योग्य कार्यों का आलोचना-प्रायश्चित्त, अतिक्रम की संभावना की अपेक्षा से है।

२. तं पुण होज्जा सेविय दप्पेणं अहव होज्ज कप्पेणं।
दप्पेण दसविहं तू इणमो वुच्छं समासेणं॥
दप्प व अकप्प निरालंब वियत्ते अपसत्थ वीसत्थो।
अपरिच्छ अकडजोगी अणाणुयावी य णिस्संको॥
—व्यवहार सूत्र उद्देश १० भाष्यगाथा ६३३, ६३४॥

—दर्पो निष्कारणं धावन-वल्गन-वीरयुद्धादिकरणं १। अकल्पोऽपरिणत-पृथ्वीकायादिग्रहणमगीतार्थानीतोपधि-शय्याहाराद्युपभोगश्च २। निरालम्बो ज्ञानाद्यालम्बनरहितप्रतिसेवनाको ३। वियत्तेति पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात्त्यक्तकृत्यः संस्तरन्नपि सन्नकृत्यं प्रतिसेव्य त्यक्तचारित्र इत्यर्थः ४। अप्रशस्तो बलवर्णादिनिमित्तं प्रतिसेवी। ५ विश्वस्तः स्वपक्षतः परपक्षतो वा निर्भयं प्राणातिपातादिसेवी ६। अपरीक्षी युक्तायुक्तपरीक्षाविकलः ७। अकृतयोगी अगीतार्थः। त्रीन् वारान् कल्पमेषणीयं चापरिभाव्य प्रथमवेलायामपि यतस्ततोऽल्पानेषणीयमपि ग्राही ८। अननुतापी अपवादपदेन कायानामुपद्रवेऽपि कृते पश्चात् अनुतापरहितः ९। निःशङ्को निर्दयः इहपरलोकशङ्कारहित इत्यर्थः १०॥

एयं दप्पेण भवे इणमन्नं कप्पियं मुणेयव्वं।
चउवीसई विहाणं तमहं वुच्छं समासेण॥

दप्पिय प्रायश्चित्त ज्ञान-विषयक, दर्शन-विषयक और चारित्र-

दंसण-णाण-चरित्ते तव-पवयण-समिति-गुत्तिहेउ वा ।
साहम्मियवच्छल्लेण वावि कुलतो गणस्स वा ॥

संघस्सा-ऽऽयरियस्स य असहुस्स गिलाण-बाल-वुड्ढस्स ।
उदय-ग्गि-चोर-सावय-भयं-कन्ताराऽऽवत्ती-वसणे ॥

—व्यवहार सूत्र उद्देश्य १० भाष्य गाथा ६३५, ६३६,६३७ ॥

—दर्शने दर्शनप्रभावकं शास्त्रग्रहणं कुर्वन्नसंस्तरणे १। ज्ञाने सूत्रमर्थं चाधीयमानो असंस्तरणे २। चारित्रे अनेषणादोषतः स्त्रीदोषतो वा चारित्ररक्षणाय ततः स्थानादन्यत्र गमने ३। तपसि विकृष्टतपोनिमित्तं घृतपानादि ४। प्रवचनरक्षादिनिमित्तं विष्णुकुमारादिरिव वैक्रियकुर्वाणादि ५। समितौ ईर्यासमित्यादिरक्षणनिमित्तं चक्षुसः सावद्यचिकित्सा-करणादि ६। गुप्तौ भावितकारणतो विकटपाने कृते मनोगुप्त्यादि रक्षणनिमित्तमकल्प्यादि ७। साधर्मिकवात्सल्यनिमित्तं ८। कुलतः कार्य-निमित्तं ९। एवं गणकार्यनिमित्तं १०। संघकार्यनिमित्तं ११, आचार्यनिमित्तं १२, असहनिमित्तं १३, ग्लाननिमित्तं १४, प्रतिषिद्ध-बालदीक्षितसमाधिनिमित्तं १५। प्रतिषिद्धवृद्धदीक्षितसमाधिनिमित्तं १६, उदके जलप्लवे १७, अग्नौ दवाग्न्यादौ १८, चौरे शरीरोपकरणापहारिणि १९, श्वापदे हिंस्रा व्याघ्रादावापतति यद्वृक्षारोहणादि २०। तथा भये म्लेच्छादिसमुत्थे २१। कान्तारे अलभ्यमानभक्तपानेऽध्वनि २२, आपदि द्रव्याद्यापत्सु २३। व्यसनं मद्यपान-गीतगानादिविषये पूर्वाभ्यासतः प्रवृत्तिः २४। तत्र यथतनया प्रतिसेवते स कल्पः। एतदेवाह—

एयन्नतरागाढे दंसणनाणे चरणसालंबो ।
परिसेविउं कयाई होइ समत्थो पसत्थेसु ॥६३८॥

—एतेषामनन्तरोदितानामन्यतरस्मिन् आगाढे (आवश्यके) समुत्थित-दर्शनज्ञानचरणसालम्बः प्रतिसेव्याकल्प्यप्रतिसेवनां कृत्वा कदाचित्प्र-

विषयक होते हैं।[1] वियत्त-किच्च=व्यक्तकृत्य[2] अर्थात् कृतयोगी गीतार्थ द्वारा किये जाने वाले कार्य का प्रायश्चित्त, कप्पिय प्रायश्चित्त होता है। इस प्रकार कप्पिय और दप्पिय प्रायश्चित्तों में दसों प्रकार के प्रायश्चित्त समाविष्ट हैं।

जिस साधक के तप-रूप दप्पिय प्रायश्चित्त वाले कई प्रतिसेवना दोष एकत्र हो जाएं तो सामूहिक रूप से सब दोषों के प्रायश्चित्तों को मिलाकर जो एक प्रायश्चित्त कर दिया जाता है, उसे संजोयणा-प्रायश्चित्त कहते हैं।

किसी प्रायश्चित्त का अनुष्ठान करते हुए साधक नया दोष लगा बैठे तो उस दोष का प्रायश्चित्त पहले प्रायश्चित्त में बढ़ा दिया जाता है, इसको आरोपणा-प्रायश्चित्त कहा जाता है।

आलोचना करते समय यदि कपट का आचरण किया जाए तो इस कपट-आचरण का पृथक् रूप में प्रायश्चित्त दिया जाता है जिसे कि पलिकुञ्चन-प्रायश्चित्त कहते हैं।[3]

[illegible] भवति। तत एषा कलिका [illegible] ॥

१. [illegible] —णाण-पायच्छित्ते, दंसण-पायच्छित्ते, [illegible] ॥ —स्थानांग सूत्र ३।४।१२ ॥

२. [illegible] —णाण-पायच्छित्ते, दंसण-पायच्छित्ते, [illegible] ॥

—स्थानांग सूत्र [illegible]॥

३. [illegible] —पडिसेवणा-पायच्छित्ते १, [illegible] आरोवणा-पायच्छित्ते ३, पलिउंचणा-पाय- [illegible] ॥

[illegible] (पडिसेविता

जो साधक इन प्रायश्चित्तों को अंगीकार एवं स्वीकार नहीं करता अपितु अपने दोषों को बढ़ाता ही चला जाता है, तो उस से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया जाता है जैसे कि —

पंचहिं ठाणेहिं समणे निग्गन्थे साहम्मियं संभोइयं, विसंभोइयं करेमाणे णाइक्कमइ तं जहा—सकिरिय-ट्ठाणं पडिसेवित्ता भवइ, पडिसेवित्ता णो आलोएइ, आलोएत्ता णो पट्ठवेई, पट्ठवेत्ता णो णिव्विसइ, जाइं इमाइं थेराणं ट्ठिइ-प्पकप्पाइं भवंति ताइं अइयंचिय अइयंचिय पडिसेवेइ से 'हन्द ![1] हं पडिसेवामि किं मे थेरा करिस्संति'।

—ठाणांग सूत्र ५।१।१४॥

अर्थात् जो दोष का सेवन करता है, सेवन करके उसकी आलोचना नहीं करता, आलोचना करने पर गुरुजन जो प्रायश्चित्त देवें वह अङ्गीकार नहीं करता, अंगीकार करके भी उसे उतारता नहीं और स्थविर भगवन्तों ने जो मर्यादाएं बांधी है उन्हें बारम्बार तोड़ता है और कहता है कि 'हां ! मैं तो ऐसे ही करूंगा, देखूंगा स्थविर मेरा क्या बिगाड़ लेंगे'। ऐसे व्यक्ति के सम्भोग काट दिए जाते हैं।

इस प्रकार के जो प्रत्यनीक व्यक्ति हैं, उनके साथ सम्भोग नहीं रखे जाते जैसे कि—

अर्थात् शीघ्र तप करवाना), ठविया (स्थापिता अर्थात् स्थापन कर रखना), कसिणा (कृत्स्ना अर्थात् क्रोध-रहित तप करना वह पूर्णतप है), अकसिणा (अकृत्स्ना अर्थात् क्रोध सहित तप करना वह अपूर्ण तप है), हाडहडा (हृतहृता अर्थात् अवस्था एवं शक्ति देखकर दिया गया तप॥ —ठाणांग सूत्र ५।२।१४॥

१. हन्द च गृहाणार्थे ॥८।२।१८१॥ —हेम-व्याकरण॥

नीक में सूत्र, अर्थ और तदुभय तीनों प्रकार के प्रत्यनीक माने जाते हैं।

तपस्वी, रोगी और शैक्ष का अनुकम्पा-प्रत्यनीक तथा इहलोक, परलोक एवं तदुभयलोक का गति-प्रत्यनीक—ये छः प्रकार के प्रत्यनीक तो अपनी हानि तक सीमित रहते हैं परन्तु उपरोक्त नव प्रकार के प्रत्यनीक तो अपनी हानि करते हुए गच्छ की भी हानि करते हैं अतः उनके साथ गच्छ के सम्भोग काट दिये जाते हैं ॥

उपरोक्त प्रसङ्गों में तो, प्रायश्चित्त न होने तक १२ प्रकार के सम्भोगों में से कुछ सम्भोग काट दिये जाते हैं किन्तु जो प्रायश्चित्ती आगमानुसार प्रायश्चित्त को अङ्गीकार ही न करे, उसे तो गच्छ-बाहिर ही किया जाता है अर्थात् उसके साथ गच्छ का कोई सम्भोग नहीं रहता जैसे कि कहा है—

भिक्खू य अहिगरणं कट्टु तं अहिगरणं अविओसवेत्ता—नो से कप्पइ गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, नो से कप्पइ बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, नो से कप्पइ गामाणुगामं दूइज्जित्तए वा, गणाओ गणं संकमित्तए, वासावासं वा वत्थए। जत्थेव अप्पणो आयरिय-उवज्झायं पासेज्जा बहुस्सुयं बब्भागमं, कप्पइ से तस्सन्तिए आलोएत्तए, पडिक्कमित्तए, निंदित्तए, गरहित्तए, विउट्टित्तए, विसोहित्तए, अब्भुट्ठित्तए, अहारिहं पायच्छित्तं. तवोकम्मं पडिवज्जित्तए। से य सुएणं पट्ठविए, आइयव्वे सिया; से य सुएणं नो पट्ठविए नो आइयव्वे सिया। से य सुएणं पट्ठविज्जमाणे नो आइयइ, से निज्जूहियव्वे सिया ॥

—बृहत्कल्प सूत्र ४।२५॥

कोई साधक किसी से क्लेश कर बैठे, जब तक वह क्लेश को शान्त करके क्षमा-याचना न कर ले, तब तक गोचरी को

[illegible] दूसरे साधुओं को अङ्गीकार न करना और [illegible] करना उसे नहीं [illegible] ([illegible]) [illegible] उसके आचार्य, उपाध्याय, बहुश्रुत और [illegible] के ज्ञाता हों, वहां जा कर आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा, विउट्टण और आत्म-विशोधन करे, आगे के लिये ऐसा न करने का मन में दृढ़ सङ्कल्प करे और किये हुए का यथायोग्य निर्जरारूप सूत्रानुसार प्रायश्चित्त अङ्गीकार करे। यदि प्राय-श्चित्त पक्षपात के कारण, आगमानुसार न दिया जाए तो प्रायश्चित्त अङ्गीकार न करे, और जो शास्त्र सूत्रानुसार दिये गए प्रायश्चित्त को अङ्गीकार न करे तो उसे विसम्भोगी घोषित करके गच्छ-बाहिर कर दिया जाना चाहिये ॥

जो तृतीयवार कपट का आचरण कर सभा में प्रायश्चित्त पा चुका हो और चतुर्थवार पुनः कपटाचरण करे तो उसे भी विसंभोगी गच्छ-बाहिर कर दिया जाता है —

तिहिं ठाणेहिं समणे निग्गन्थे साहम्मियं संभोइयं, विसंभोइयं करे-माणे नाइक्कमइ तं जहा—सङ्कं वा दट्ठुं, सड्ढियस्स वा निसम्म तच्चं मोसं आउट्टइ, चउत्थं नो आउट्टइ ॥ —ठाणांग सूत्र ३।३।६॥

किसी ने दोष-स्थान सेवन किया, उसकी शुद्धि करने के हेतु उससे स्वीकार करवा कर प्रायश्चित्त देने के लिए उससे पूछा गया, उसने साफ़ इन्कार कर दिया, यदि प्रायश्चित्त देने वाले ने अपनी आँखों से उसका दोष-सेवन देखा है, तो उसे पूरा प्रमाण देकर प्रायश्चित्त देवे एवं शुद्ध करे। दोष-सेवन का प्रायश्चित्त और कपट कर झूठ बोलने का प्रायश्चित्त

पृथक् पृथक् देकर और फिर दोनों को मिलाकर संजयोणा-प्रायश्चित्त दिया जाए। यदि उसे दोष सेवन करते हुए को स्वयं न देखा हो तो जिस विश्वास-पात्र ने अपनी आँखों देखा हो, उससे सुन कर उस दोषी को प्रायश्चित्त दिया जाए।

एक वार तो ऐसा कर दिया गया परन्तु उसने दूसरी वार फिर दोष का सेवन किया और पूछने पर भी फिर कपटाचरण कर झूठ बोला, तब भी उपरोक्त प्रकार से उसे प्रायश्चित्त दिया जाए।

यदि वह तीसरी वार भी ऐसा करे तो उपरोक्तानुसार उसे भा के बीच संजोयणा-प्रायश्चित्त मिले।

यदि वह ढीठ चतुर्थ वार पुनः दोष-सेवन करे और पूछे जाने पर माया करके झूठ बोले तो पूरा प्रमाण मिल जाने पर उसे कोई प्रायश्चित्त देने की आवश्यकता नहीं अपितु उसे विसंभोगी कर गच्छ से वाहिर कर दिया जाता है।

कौन साधक अपने कपटाचरण को छिपाता है और कौन उसकी सम्यक् प्रकार आलोचना करता है इस विषय में सूत्र-कार प्रतिपादन करते हैं—

तिहिं ठाणेहिं मायी, मायं कट्टु णो आलोएज्जा, णो पडिक्कमेज्जा, णो णिंदेज्जा, णो गरहेज्जा, णो विउट्टेज्जा, णो विसोहेज्जा, णो अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, णो अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जेज्जा तं जहा—अकरिंसु वाहं, करेमि वाहं, करिस्सामि वाहं ॥

—ठाणांग सूत्र ३।३।१॥

मायावी, कपटाचरण कर तीन कारणों से गुरु-साक्षी में आलोचना नहीं करे, मिथ्यादुष्कृत न दे, उसे बुरा न समझे

उसमें तुष्टता न करे, आगे के लिए न करने का संकल्प न करे, और अतिचारों की शुद्धि कर यथायोग्य तप-प्रायश्चित्त ग्रहण न करे। जैसे कि—

(१) मैंने स्वयं यह कार्य किया, अब मैं इसकी कैसे निन्दा करूँ।

(२) यह कार्य मैं अब भी कर रहा हूँ, इसको मैं कैसे [illegible]।

(३) यह कार्य मैंने अब भी करना है, इसलिए इसका कैसे प्रतिक्रमण करूँ।

तिहिं ठाणेहिं मायी, मायं कट्टु नो आलोएज्जा नो पडिक्कमेज्जा जाव [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

कारणों से आलोचना करते हैं, निष्कपट होते हैं, उसे बुरा समझते हैं, उस दुराचरण से घृणा करते हैं, आगे नहीं न करने का दृढ़ संकल्प मन में धारण करते हैं और लगे हुए अतिचारों की शुद्धि कर उस का यथा-योग्य प्रायश्चित्त ग्रहण करते हैं—

(१) यदि मैं अपना दोष गुप्त रखूंगा तो वह कभी गुप्त न रह सकेगा फिर लोगों में अधिक निन्दा का पात्र बनूंगा।

(२) माया-शल्य से मृत्यु पाकर दुर्गति में जाना पड़ेगा।

(३) वहां आयु समाप्त करके फिर मनुष्य लोक में अश्रेष्ठ कुलों में जन्म धारण करना पड़ेगा।

तिहिं ठाणेहिं मायी, मायं कट्टु आलोएज्जा जाव पडिवज्जेज्जा तं जहा—अमायिस्स णं अस्सिं लोगे पसत्थे भवइ, उववाए पसत्थे भवइ, आयाई पसत्थे भवइ।

(१) अपनी भूल मानने से और उसका पश्चात्ताप करने से इस लोक में प्रशंसा होती है कि 'धन्य है जो अपना जन्म सुधार रहा है।'

(२) आलोचना करने से जिनाज्ञा का आराधक होता है और मृत्यु के पश्चात् इन्द्र के सामानिक देव आदि की पदवी पाता है।

(३) वहां से आयु पूर्ण कर फिर श्रेष्ठ कुलों में जन्म धारण करके अपना कल्याण करता है।

तिहिं ठाणेहिं मायी, मायं कट्टु आलोएज्जा जाव पडिवज्जेज्जा तं जहा—णाणट्ठयाए, दंसणट्ठयाए, चरित्तट्ठयाए॥ —ठाणांग सूत्र ३।३।१॥

उत्तम जीव अपने ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की वृद्धि के लिये अपने कपटाचरण की आलोचना करके उसका प्रायश्चित्त अंगीकार करते हैं॥

आयरिय-उवज्झाए गणंसि आणं वा धारणं वा नो सम्मं पउंजित्ता भवइ १, आयरिय-उवज्झाए गणंसि अहारायणियाए किइकम्मं वेणइयं नो सम्मं पउंजित्ता भवइ २, आयरिय-उवज्झाए गणंसि जे सुयपज्जवजाए धारिंति ते काले नो सम्ममणुपवाइत्ता भवइ ३, आयरिय-उवज्झाए गणंसि सगणियाए वा परगणियाए वा निग्गंथीए (सद्धिं) बहिलेस्से भवइ ४, मित्ते-णाइगणे वा से गणाओ अवक्कमेज्जा, तेसिं संगहोवग्गहट्टयाए गणावक्कमणे पण्णत्ते ५ ॥

—ठाणांग सूत्र ५।२।१७॥

(१) जिस गच्छ के आचार्य उपाध्याय अपने गण में आज्ञा=स्पर्शना, धारणा=श्रद्धना और प्ररूपणा अथवा आज्ञा=विधिरूप आदेश, धारणा=निषेधरूप आदेश सम्यक् प्रकार नहीं देते और गण से पालन नहीं करवाते, जिसके मन में जो आए सो कर गुज़रे; उत्सूत्र प्ररूपणाएं चलती हों और विपरीताचरण किये जाते हों, कोई पूछने वाला न हो कोई रोकने वाला न हो, जहां सारणा वारणा न हो तो ऐसे गच्छ को छोड़ देना चाहिये।*

(२) जिस गच्छ के अधिकारिगण अपने गण में छोटों से बड़ों का आदर-मान और विनय-भक्ति नहीं करवाते, जिस गच्छ में छोटे बड़े का कोई लिहाज़ नहीं सर्वत्र आपा-धापी व्यापी हो तो ऐसे गच्छ को छोड़ देना चाहिये।

(३) जिस गच्छ के अधिकारिगण साधकों को शास्त्र-स्वाध्याय नहीं करवाते तो उस गच्छ को छोड़ देना चाहिये।

(४) जिस गच्छ के अधिकारिगण साध्वियों से (स्त्रियों से) अनुचित सम्पर्क रखते हों तो उस गच्छ को छोड़ देना चाहिये।

---

* जहिं नत्थि सारणा वारणा य, पडिचोयणा या गच्छंमि ।
सो उ अगच्छो गच्छो, मोत्तव्वो संजमत्थीहिं ॥

(७) अभ्युत्थान—सामने आते हुओं का, आसन त्यागते खड़े होकर सम्मान करना अभ्युत्थान-सम्भोग है।

(८) कृतिकर्म—वन्दना करना कृतिकर्म-सम्भोग है।

(९) वैयावृत्य—आहार-पानी, वस्त्र-पात्र, पीठ-फलक आदि लाकर देना, उच्चार-प्रस्रवण परिष्ठापन करना और किसी कलह को शान्त करने में सहायता देना इत्यादि सब वैयावृत्य-सम्भोग माना जाता है।

(१०) समवसरण—एक मकान में ठहरना समवसरण-सम्भोग है।

(११) निषद्या—एक कमरे में आसन लगाना, निषद्या-सम्भोग है।

(१२) कथा-प्रबन्ध—एक स्थान बैठ कर परस्पर वार्तालाप, विचार-विनिमय करना, कथा-प्रबन्ध-सम्भोग होता है।

इन सम्भोगों की दस कोटियां होती हैं—

(१) प्रथम कोटि में सब-के-सब सम्भोग खुले रहते हैं।

(२) दूसरी कोटि में भक्तपान-सम्भोग, शिष्यप्रदान-सम्भोग और वन्दना का सम्भोग—इन तीनों को छोड़ कर शेष नव सम्भोग खुले रहते हैं।

(३) तीसरी कोटि में उपधि-सम्भोग और बन्द हो जाता है और चार को छोड़ कर शेष आठ खुले रहते हैं।

(४) चौथी कोटि में अञ्जलिप्रग्रहण सम्भोग और बन्द होकर कुल ५ बन्द होते हैं और सात खुले रहते हैं।

(५) पाचवीं कोटि में निकाय बन्द हो — ६ बन्द … हैं।

—अतिरिक्त कथा-प्रबन्ध-सम्भोग को छोड़कर शेष ११ रहते हैं।

(२) अन्यसम्भोगी—अन्यसम्भोगी के साथ गतागत [illegible], शिष्य-प्रदान सम्भोग और कृतिकर्म सम्भोग — ये तीन सम्भोग कम-से-कम बन्द रहते हैं।

(३) पासत्थादि पञ्चकुशील—इनसे उपरोक्त तीन तथा उपधि सम्भोग अञ्जलिप्रग्रहण, निषद्या और अनुत्थान—इनसे सामान्य-रूप को छोड़ कर विशिष्ट-रूप से ये चार बन्द होकर ७ बन्द रहते हैं परन्तु यथाच्छन्द और चारित्र-कुशील से श्रुतसम्भोग अपवाद-रूप से होता है अतिरिक्त शेष तीन से श्रुतसम्भोग, निषद्या-सम्भोग और कथा-किन्तु यथाच्छन्द से श्रुत-सम्भोग, निषद्या-सम्भोग और बन्द होकर कुल १० सम्भोग प्रबन्ध-सम्भोग—ये तीन और चारित्र-कुशील से समोसरण-सम्भोग और, बन्द होते हैं और बन्द होते हैं केवल अधिकरणोपशमनरूप कुल ११ सम्भोग उचित सीमा तक खुला रहता है और शेष वैयावृत्य-सम्भोग सब-के-सब बन्द होते हैं।

(४) विसम्भोगी—विसम्भोगी दो प्रकार के होते हैं एक प्रायश्चित्ती और दूसरा अप्रायश्चित्ती अर्थात् जो श्रुतानुसार प्रायश्चित्त न लेता हो और वह जो किसी दोष का सेवन करते हुए तीन बार प्रायश्चित्त ले चुका हो और फिर चतुर्थ वार उसी दोष का सेवन करके प्रायश्चित्त योग्य न होकर बाहिर किया गया हो, ऐसे अप्रायश्चित्तियां और प्रायश्चित्तियां, दोनों प्रकार के विसम्भोगियों से कोई सम्भोग नहीं होता। प्रायश्चित्ती, प्रायश्चित्त कर चुकने पर सम्भोग योग्य होता है।

(५) संयतीवर्ग—साध्वियों से, उत्सर्ग और अपवाद

अभिमत

"हम सुशील कैसे बनें ?"

यह सुन्दर कृति साधु-जीवन को उन्नत करने में बहुत ही उपयोगी और लाभप्रद है। कुछ ही पृष्ठ पढ़ने से हृदय, ऐसी बहुमूल्य कृति के लिये लेखक के श्रम को बार २ सराहने लगा। आज के युग में ऐसे पुस्तक-रत्नों की और भी अधिक आवश्यकता है। नवदीक्षित युवा मुनियों को तो इस से अनगिनत लाभ हो सकते हैं जो कि उन्हें संसार में पूज्य ही नहीं—आदर्श-मुनि भी सहज में ही बना सकते हैं। लेखक के पुनीत अथ च सराहनीय परिश्रम को यदि वे सार्थक करेंगे तो लेखक को ही नहीं, मुझे भी महान् हर्ष हुए बिना न रहेगा। ऐसी उत्तम कृति को लिखने में महान् श्रम के लिये लेखक को पुनः पुनः धन्यवाद ॥

—चन्दन मुनि
पट्टी (अमृतसर)

विषयक वार्तालापरूप कथाप्रबन्ध-सम्भोग के अतिरिक्त और कोई सम्भोग नहीं होता।

(६) गृहस्थवर्ग—गृहस्थियों से, अपवादरूप वाचना व छोड़कर, विधिपूर्वक पृच्छना आदि श्रुतसम्भोग के अतिरि आरम्भ के १० सम्भोग नहीं होते, अर्थात् पृच्छनादि श्रु सम्भोग, निषद्या-सम्भोग, और वार्तालापादि कथा-प्रबन्ध सम्भोग—ये तीन सम्भोग होते हैं। गृहस्थ-स्त्रियों से ये ती भी नहीं होते। पुरुषों में भी योग्य गृहस्थों से होते हैं सामान्यतया भगवान् का आदेश है कि 'गिही संथवं न कुज्ज कुज्जा साहूहिं संथवं'—दशवैकालिक सूत्र ८।५३॥ तथा जि स्त्री-पुरुषों के संसर्ग से संयमी-जीवन और ज्ञान-ध्यान को क्ष पहुँचती हो उन नर-नारियों का सम्पर्क छोड़ दे चाहिये 'जेण पुण जहाइ जीवियं, मोहं वा कसिणं नियच्छइ नर-नारिं पजहे सया तवस्सी, न य कोऊहलं उवेइ स भिक्खू'। उत्तराध्ययन सूत्र १५।६॥

कल्पानुसार किसी साधक का दुःख निवारण करना और ज्ञान-दर्शन-चारित्र की वृद्धि होती हो तथा धर्म-विनय लाभ होता हो तो अपवादरूप से इन उपरोक्त सभी कोटियों सम्भोगों में हेर-फेर भी हो जाता है॥

अभिमत

"हम सुशील कैसे बनें ?"

यह सुन्दर कृति साधु-जीवन को उन्नत करने में बहुत ही उपयोगी और लाभप्रद है। कुछ ही पृष्ठ पढ़ने से हृदय, ऐसी बहुमूल्य कृति के लिये लेखक के श्रम को बार २ सराहने लगा। आज के युग में ऐसे पुस्तक-रत्नों की और भी अधिक आवश्यकता है। नवदीक्षित युवा मुनियों को तो इस से अनगिनत लाभ हो सकते हैं जो कि उन्हें संसार में पूज्य ही नहीं—आदर्श-मुनि भी सहज में ही बना सकते हैं। लेखक के पुनीत अथ च सराहनीय परिश्रम को यदि वे सार्थक करेंगे तो लेखक को ही नहीं, मुझे भी महान् हर्ष हुए बिना न रहेगा। ऐसी उत्तम कृति को लिखने में महान् श्रम के लिये लेखक को पुनः पुनः धन्यवाद ॥

—चन्दन मुनि

पट्टी (अमृतसर)

विषयक वार्तालापरूप कथाप्रबन्ध-सम्भोग के अतिरिक्त और कोई सम्भोग नहीं होता।

(६) गृहस्थवर्ग—गृहस्थियों से, अपवादरूप वाचना को छोड़कर, विधिपूर्वक पृच्छना आदि श्रुतसम्भोग के अतिरिक्त आरम्भ के १० सम्भोग नहीं होते, अर्थात् पृच्छनादि श्रुत-सम्भोग, निषद्या-सम्भोग, और वार्तालापादि कथा-प्रबन्ध-सम्भोग—ये तीन सम्भोग होते हैं। गृहस्थ-स्त्रियों से ये तीन भी नहीं होते। पुरुषों में भी योग्य गृहस्थों से होते हैं। सामान्यतया भगवान् का आदेश है कि 'गिही संथवं न कुज्जा, कुज्जा साहूहिं संथवं'—दशवैकालिक सूत्र ८।५३॥ तथा जिन स्त्री-पुरुषों के संसर्ग से संयमी-जीवन और ज्ञान-ध्यान को क्षति पहुँचती हो उन नर-नारियों का सम्पर्क छोड़ देना चाहिये 'जेण पुण जहाइ जीवियं, मोहं वा कसिणं नियच्छइ। नर-नारिं पजहे सया तवस्सी, न य कोऊहलं उवेइ स भिक्खू' ॥—उत्तराध्ययन सूत्र १५।६॥

कल्पानुसार किसी साधक का दुःख निवारण करना हो और ज्ञान-दर्शन-चारित्र की वृद्धि होती हो तथा धर्म-विनय का लाभ होता हो तो अपवादरूप से इन उपरोक्त सभी कोटियों के सम्भोगों में हेर-फेर भी हो जाता है॥

"हम सुशील कैसे वनें ?"

यह सुन्दर कृति साधु-जीवन को उन्नत करने में वहुत ही उपयोगी श्रोर लाभप्रद है। कुछ ही पृष्ठ पढ़ने से हृदय, ऐसी वहुमूल्य कृति के लिये लेखक के श्रम को वार २ सराहने लगा। आज के युग में ऐसे पुस्तक-रत्नों की और भी अधिक श्रावश्यकता है। नवदीक्षित युवा मुनियों को तो इस से अनगिनत लाभ हो सकते हैं जो कि उन्हें संसार में पूज्य ही नहीं—आदर्श-मुनि भी सहज में ही वना सकते हैं। लेखक के पुनीत अथ च सराहनीय परिश्रम को यदि वे सार्थक करेंगे तो लेखक को ही नहीं, मुझे भी महान् हर्ष हुए विना न रहेगा। ऐसी उत्तम कृति को लिखने में महान् श्रम के लिये लेखक को पुनः पुनः धन्यवाद ॥

—चन्दन मुनि
पट्टी (अमृतसर)